प्रथम संस्करण की प्रस्तावना

लोकप्रिय मन्त्रिमडलों का ऐसे मौके पर अधिकारारूढ होना, जब कि देश में खुराक और अन्य आवश्यक वस्तुओं की कमी महसूस की जा रही है, फायदेमंद सिद्ध हो सकता है, बशर्ते इस मौके से उचित लाभ उठाकर उचित दिशा में लोगों की उत्पादन-शक्ति बढ़ाने का देशव्यापी आंदोलन उठाया जाय और कमी की पूर्ति की जाय। ऐसा आंदोलन परिणामकारक होने के लिए यह जरूरी है कि समूचे देश में एक-सा कार्यक्रम हो और हरएक सूबे का कार्यक्रम एक-दूसरे के कार्यक्रमों से मेल खाता हो। इक्के-दुक्के और कभी-कभी किये जानेवाले कार्य हमें बहुत दूर न ले जा सकेंगे। विभिन्न सूबों के मंत्रिमडलों को आपस में विचार-विनिमय करना आसान हो, इसलिए ता० ३१ जुलाई और १ अगस्त १९४६ को पूना में मंत्रियों की एक कान्फ्रेन्स बुलायी गयी थी।

इस कान्फ्रेन्स में आये हुए मन्त्रियों को 'राज्य के कर्तव्य' नाम की पुस्तिका पहले ही भेज दी गयी थी। प्रस्तुत सस्करण याने उस पुस्तिका पर मैंने इस कान्फ्रेन्स में दिये हुए प्रास्ताविक तथा उपसहारात्मक भाषण तथा 'राज्य के कर्तव्य' पर की हुई चर्चा का सार है।

चूँकि इसमें दी हुई जानकारी की बहुत जगहों से माँग आती रहती थी, इसलिए वह लोगों की सुविधा के लिए पुस्तक रूप में प्रकाशित की जा रही है।

इस योजना में लोगों के शरीर, सतुलित आहार तथा अन्य आवश्यक चीजें उन्हें मयस्सर कराकर, अधिक मजबूत बनाने का रास्ता दिखाया गया है। अब चूँकि केन्द्र में भी राष्ट्रीय मन्त्रिमंडल कायम हुआ है, क्या हम आशा करें कि हमारे लोगों की आर्थिक दशा सुधारने की यह योजना शीघ्र ही कार्यान्वित होगी?

यह योजना एकदम सादी तो है ही, पर कम खर्चीली भी है। इसकी व्याप्ति बहुत बड़ी होने से उम्मीद की जाती है कि कम-से-कम समय में इसके द्वारा लोगों को राहत मिल सकेगी। काला बाजार, मुद्रास्फीति और रेशनिंग की धाँधली से टक्कर लेने का यह निश्चित रूप से प्रभावी जरिया सिद्ध होगी। देश की आज की हालत में देर करना खतरनाक होगा। मन्त्रियों ने जो प्रस्ताव पास किया है, उस पर सूबों की सरकारें फौरन अमल करेंगी और मतदाताओं को दिये हुए अभिवचन पूर्ण करेंगी, ऐसी हमें उम्मीद है।

मगनवाडी, वर्धा
२७ अगस्त, १९४६

—जो० कॉ० कुमारप्पा

◆

संदर्भ ग्रंथ

प्रस्तुत पुस्तक में जिन उद्योगों की चर्चा आयी है, उनकी लागत तथा अन्य कार्यक्रमों आदि की विस्तृत जानकारी के लिए नीचे लिखी अंग्रेजी रिपोर्टें पढनी चाहिए

१. 'मध्यप्रांत सरकार की औद्योगिक अन्वेषण-समिति की रिपोर्ट' भाग १ और २।

२ 'वायव्य सीमाप्रांत के लिए एक आर्थिक योजना' लेखक—जो० कॉ० कुमारप्पा।

◆

अनुक्रम

[पहला खण्ड]

[दूसरा खण्ड]

◆

ग्राम-सुधार की एक योजना

[पहला खण्ड]

योजना की आवश्यकता और स्वरूप : १ :

इस बात को तय करना चाहिए कि हम जो नियोजन करते हैं, उसका साध्य क्या है ? आम लोगों का ऐसा खयाल है कि राष्ट्रीय नियोजन एक बड़ी भारी पेचीदी चीज है, जिसे अर्थशास्त्री और काबिल लोग ही समझ सकते हैं। हम जो नियोजन अमल में लाना चाहते हैं, उसका मकसद क्या है, इसे अगर आम लोग अच्छी तरह नहीं समझेंगे, तो हमारा वह नियोजन निकम्मा हो जायगा। उस नियोजन को हम राष्ट्रीय नियोजन नहीं कह सकते हैं, जिसका उद्देश्य किसान नहीं समझ लेंगे और जिसे कामयाब बनाने के लिए किसान अपना हार्दिक सहयोग नहीं देंगे। जब तक हम उनका बौद्धिक सहयोग प्राप्त नहीं कर सकेंगे, तब तक सिवा जबरदस्ती के प्रयोग के हम अपने नियोजन को कारगर नहीं बना सकेंगे। अगर हम जबरदस्ती और हिंसा का प्रयोग करेंगे, जैसा रूस ने किया है, तो बात दूसरी है। हम नहीं चाहते कि नियोजन जारी रखने के लिए खून बहाया जाय। बल्कि हम यही चाहते हैं कि आम लोग इसे पूरी तरह समझ लें कि जो बात उनके सामने रखी जाती है, वह उनके

लिए है या नहीं। अगर वे उसे पसन्द करेंगे, तो उनका सहयोग खुशी के साथ हमे मिलेगा।

नियोजन का अर्थ

कुछ साध्यों को सफल बनाने के लिए कई बातें इकट्ठी करने को हम नियोजन कह सकते हैं। वे कौन-सी बाते हैं, जिन्हें हमें एकसूत्र में लाना चाहिए ? हो सकता है कि हमारे नियोजन में ऐसी कई बातें हों, जो कि दूसरे देशों में नहीं पायी जातीं, जिनकी हस्ती दूसरे देशों मे नहीं है। इसलिए जो नियोजन रूस ने जारी किया है या जिसे इंग्लैण्ड या अमेरिका ने स्वीकृत किया है, हो सकता है कि वह नियोजन हमें हमारे ध्येय तक पहुँचाने के लिए उपयुक्त न हो। हम जो ग्रेट ब्रिटेन का नियोजन बतलाते हैं, वह एक बड़ी ताज्जुब की बात है, क्योंकि लोगों ने इस बात को कभी भी सुना नहीं है। ब्रिटिश लोगों की खासियत यह है कि वे योजना नहीं बनाते, लेकिन योजनापूर्वक काम करते हैं। वे हरएक आदमी को विशिष्ट योजना के मुताबिक काम करने पर बाध्य करते हैं। अव्वल में अगर नियोजन नहीं होता, तो आज ब्रिटिश साम्राज्य और ब्रिटेन का व्यापार दिखाई ही न देता। ब्रिटिश लोगों की आर्थिक कार्रवाइयाँ, साम्राज्य के मुख्तलिफ मुल्कों में जारी की हुई व्यापारविषयक रिआयतें, उनका नौ-दल, उनकी नाविक नीति--ये सब चीजें उनके नियोजन के ही अंग हैं। शायद वह राष्ट्रीय नियोजन न हो, वह एक लन्दन केन्द्र या बैंक ऑफ इंग्लैण्ड से जारी किया हुआ नियोजन हो, लेकिन आखिर वह है नियोजन ही। साराश यह है कि ये सब नियोजन—भले ही वह रूसी नियोजन हो, अमेरिकी नियोजन हो या अंग्रेजी नियोजन हो—अपनी-अपनी परिस्थितियों के कारण बने हुए हैं। अगर इन सब चीजों की हस्ती हमारे देश मे न हो और उन देशों की जैसी अवस्था हमारे देश मे न पायी जाती हो और ऐसी हालत

में भी हम अगर उन्हींकी राह पर चलकर अपना नियोजन बनायेंगे, तो वेशक हम धोखा खायेंगे।

हमारा साध्य

रूसियों ने जब नियोजन किया, तब रूस जार की हुकूमत के नीचे दबा हुआ था। अमीर लोग धन-मद में मस्त थे और किसान लोग जुल्म के नीचे रगड़े जाते थे। इसका स्वाभाविक नतीजा यह हुआ कि किसानों ने यह नारा लगाया कि जब हम सत्ताधारी होंगे, तब हम भी मालमस्त होंगे। 'मालमस्त होने' का मतलब यह है कि अपनी आवश्यकताओं को बढाना और उनकी तृप्ति करना। रहने के लिए वड़े महल, ऐश-आराम देनेवाली अच्छी-अच्छी चीजें पैदा करना ही उन्होंने अपना साध्य मान लिया और उसके लिए प्रयत्न-शील हुए। उनके नियोजन की बुनियाद इस प्रकार की थी।

इसी तरह हमें अपने नियोजन की नींव अपने देश की हालत और उसके वैशिष्ट्य में ही डालनी चाहिए। यह बात जरूरी है कि हम अपनी गरीबी को सदा ध्यान में रखें। मैं आपको एक किस्सा बताना चाहता हूँ, जिससे आपको पता लगेगा कि हमारी गरीबी किस हद तक पहुँची है। पिछली बार जब मध्यप्रदेश में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल अधिकारारूढ था, तब उसने प्रदेश की आर्थिक जाँच करनी चाही। हमने करीब छह सौ देहातों की जाँच की। हमारी इच्छा थी कि जाँच करने के काम में जितनी सादगी हो सके, उतनी अमल में लायी जाय। हम एक गाँव से दूसरे गाँव तक पैदल जाते थे। मेरे साथ कॉलेज के दस-बारह विद्यार्थी थे। हम एक दिन चाँदनी रात मे जा रहे थे। कुछ दूर छोटे-छोटे पेड़ों के नीचे छाँह में कुछ चीज देखकर मैंने लड़कों से कहा—"वह क्या है, सियार है या और कुछ ?" एक लड़के ने जवाब दिया—"वह तो जमीन पर सरकती हुई एक मनुष्य की-सी आकृति दिखाई देती है। हम उधर

चलकर उसका ठीक पता लगायेंगे।" हम उधर गये। वह चीज क्या थी, आप सोच सकते हैं? वह एक बुड्ढी औरत थी, जिसके वदन पर शायद ही कोई वस्त्र हो। वह घास के बीज जमा कर रही थी। वह बोली—"मेरे पास खाने के लिए कुछ नहीं है। यही मुझे मिल सकता है।" घास का बीज पानी में पकाकर वह खाती थी। हमारी गरीबी का यह चित्र आपको खयाल मे रखना चाहिए। हमे इसकी कोई जरूरत नहीं कि हम मीलों तक सीमेंट के रास्ते बनायें या टनों फौलाद पैदा करें। इन कामों में रस लेनेवाले लोग अपने हित सँभालने की स्वयं ताकत रखते हैं। यदि आप किसीकी चिंता करना चाहते हैं, तो उस बुढ़िया की ही कीजिये।

प्रश्न है कि हिन्दुस्तान में हमे किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए योजना बनानी चाहिए? हमेशा यह कहा जाता है कि हमको गरीबी नाबूद करना है, लेकिन गरीबी के मानी क्या हैं? किसीने बताया है कि गरीबी से मतलब है, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने मे असमर्थ होना। पर आपकी आवश्यकता क्या है? क्या रॉल्स रॉइस मोटरगाड़ी एक आवश्यक चीज है? यदि उस आवश्यकता की पूर्ति आज नहीं कर सकते हैं, तो क्या आप गरीब हैं? यदि कोई स्त्री लिपस्टिक खरीदना चाहे और उसके पास उतने पैसे न हों, तो क्या वह गरीब है? साराश, कई आवश्यकताए प्राथमिक तौर की होती हैं, तो कई कृत्रिम तौर पर पैदा की जाती हैं। कई आवश्यकताएँ ऐसी होती हैं, जिनकी पूर्ति के बिना आदमी का जीना असंभव-सा हो जाता है। आदमी को अपने व्यक्तित्व के विकास और अपने शरीर की हस्ती टिकाने के लिए ये आवश्यक होती हैं। ये नैसर्गिक भी हैं और इन्हींकी पूर्ति के लिए हम कोशिश करेंगे, न कि कृत्रिम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए।

प्राथमिक आवश्यकताओं में अहम दर्जे की कौन-सी हैं? प्रथम तो भोजन है। आप नगे रह सकते हैं, पर भूखे नहीं। हमारे देश मे

अकाल आकस्मिक न रहकर एक स्थायी चीज बन गयी है। इसलिए हमारी योजना का प्रधान उद्देश्य यह स्थिति मिटाना होना चाहिए। अकाल से हम कैसे बचेंगे और लोगों को भोजन कैसे देंगे, इसके लिए हमारे पास कौनसे साधन हैं ? क्या पूँजी के बल पर यह हम सिद्ध करेंगे ? बहुतेरे कहते हैं कि आप जितनी पूंजी लगायेंगे, उतना ही नतीजा पायेंगे। अर्थशास्त्र के पंडितों ने आवश्यक पूँजी का और उसके फलस्वरूप बढनेवाली प्रतिशत पैदावार का हिसाब लगाया है। वे शायद मानते हैं कि खेतों में पैसा बोने से उसमें से पैदावार मिल सकती है, पर वास्तव में ऐसा नहीं है।

साधन

हमारे देश में संपत्ति के उत्पादन का सबसे बड़ा साधन मनुष्य की मेहनत है। यदि हमें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी है, तो इस उत्तम साधन का उपयोग कर अपनी भूख की तृप्ति के लिए माल पैदा कर सकते हैं।

हमें याद रखना चाहिए कि हम चंद लोगों के लिए नहीं, बल्कि राष्ट्र के हरएक नागरिक के लिए योजना बना रहे हैं। योजना यदि संतोषजनक बनानी है, तो उसे हरएक आदमी के जीवन को स्पर्श करना चाहिए। इतनी विस्तृत बुनियाद की योजना हम-जैसे पूँजी के अभाववाले दरिद्र देश में पूँजी के बल पर बनायी ही नहीं जा सकती। अतः जो योजना पूंजी के बल पर बनायी जाती है या भोजन जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर दुर्लक्ष्य करके बनायी जाती है या हमारे देश मे उपलब्ध मनुष्य-शक्ति को भुलाकर बनायी जाती है, वह हिंदुस्तान के लिए उपयुक्त न होगी। पश्चिम के राष्ट्रों की योजना का केन्द्रबिंदु भौतिक संपत्ति है, यानी वे हरएक साधन का उपयोग करना चाहते हैं। लेकिन यह सब किस हेतु से, इस बारे में उनकी राय कुछ पक्की नहीं हुई है। मेज और कुर्सियों

से हमारी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती। सोवियत रूस की योजना का इतिहास और उसका स्वरूप ऐसा क्यों रहा, ये सब बातें गौर करने लायक हैं। वह अर्थशास्त्र के इतिहास का विषय है। रूसी योजना, अमेरिकी योजना अपनी-अपनी भूमि से गहरा ताल्लुक रखती हैं।

आप बहुत-सी चीजें भिन्न-भिन्न तरीकों से कर सकते हैं, परन्तु आपका उद्देश्य आपके तरीके को तय करेगा। पिछले कुछ महीनों मे मै कोलंबो से काबुल तक दौरा करता रहा। विभिन्न सरकारों द्वारा अपनाये गये विभिन्न तरीकों और उनके फलस्वरूप लोगों की हालत में होनेवाले परिणामों को मैंने देखा। इनमें से एक चित्र आपके लाभ के लिए पेश कर रहा हूँ। सिलोन के दौरे के समय बहुत से लोग मुझसे पूछते थे, "हमें स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए क्या करना चाहिए?" मैं स्वभावतः स्वतंत्रता के आर्थिक पहलू मे रस लेता हूँ, क्योंकि स्वतंत्रता और अर्थशास्त्र अविभाज्य हैं। मैंने उनसे कहा—"स्वतंत्रता पाने के पहले स्वातंत्र्य टिकाने की आपमें शक्ति होनी चाहिए। बताइये कि आप क्या पैदा करते हैं, किस चीज का आयात करते हैं और किस पर गुजारा करते हैं?" उन्होंने बताया—"हम चावल पर अपना गुजारा करते हैं। सारा चावल बर्मा व स्याम से आता है। हमारे कपड़े के लिए कनाड़ा की मिलों का सूत आता है। हम यहाँ रबर, चाय व कॉफी पैदा करते हैं और उसका निर्यात कर देते है।" तब मैंने कहा—"स्वातत्र्य प्राप्ति के लिए पहली बात जो आप कर सकते हैं, वह यह है कि आप अपने हाजमे को रबर खाने का आदी बना दें। यदि आप ऐसा नहीं करते, तो आप स्वतंत्र हो नहीं सकते। दूसरी चीज आपको यह करनी चाहिए कि चाय की पत्तियों से कपडा बनाने का कोई तरीका आप ढूँढ निकालें, वरना आपको कपड़े मिल नहीं सकते। क्योंकि कोलंबो बदरगाह में एक जंगी जहाज आकर

आपको नंगे और भूखे रहने के लिए मजबूर कर सकता है। प्राथमिक आवश्यकताओं के बारे में आपको आत्मनिर्भर होना ही चाहिए।"

कहा जाता है कि दुनिया हर रोज छोटी बनती जा रही है और कोई भी राष्ट्र स्वावलम्बी हो नहीं सकता। दुनिया छोटी जरूर बन रही है, पर किस अर्थ में? आवागमन के साधनों और भौतिक साधनों के लिहाज से वह जरूर छोटी बनी है। किंतु मानवता की दृष्टि से और नैतिक दृष्टि से क्या वह छोटी बनी है? इस दृष्टि से एक राष्ट्र क्या दूसरे के नजदीक आया है? आज जर्मनी क्या इंग्लैंड के अधिक नजदीक है? पहले की अपेक्षा आज जर्मनी क्या अमेरिका के अधिक नजदीक है? वे तो एक-दूसरे से दूर भागे जा रहे हैं। हम ऐसी भाषा का उपयोग कर रहे हैं, जो हम खुद ठीक-ठीक नहीं समझते हैं। स्वावलम्बन एक ऐसा साधन है, जिसके बल पर दुनिया अधिक समीप आ सकती है। स्वावलम्बन परस्पर मेल बैठानेवाली और अपनी ओर खींचनेवाली एक ऐसी ताकत है, जिसके बल पर सारी वसुंधरा का एक कुटुंब बनाया जा सकता है। इसीलिए हम कहते हैं कि प्राथमिक आवश्यकताओं के बारे में यदि स्वावलम्बन हो, तो मनुष्य-समाज में भाईचारे की भावना फैलेगी। इस असली बात को हमें समझना चाहिए और आजकल के विचित्र प्रकार के प्रचार से भ्रमित न होना चाहिए। यदि हम स्वावलम्बन की योजना बनाते हैं, तो पर-राष्ट्रों के हमले के खतरों की कम आशंका होगी।

मैंने कोलम्बो व सिलोन छोड़ा और देश के दूसरे कोने पर स्थित काबुल पहुँचा। सिलोन एक ब्रिटिश उपनिवेश है, इसलिए उसकी आर्थिक योजना लन्दन में बनायी जाती है। उस योजना का केन्द्रबिन्दु लन्दन है, जिसके द्वारा सिलोन पर की पकड़ कायम रखी जाती है। उसका मकसद सिलोन को खिलाने-पिलाने का नहीं

दिया जाता है। मैंने देखा कि मोटर ड्राइवर उस अधिकारी को 'सरदार' कहकर पुकारता था। बाहर जाने पर मैंने उससे पूछा कि "तुम उनको 'सरदार' क्यों कहते थे?" उसने बताया कि "वह अमीर है, याने राजकुटुंब का आदमी है।" वह सिर्फ ब्रिगेडियर नहीं था, राजकुटुंब का आदमी था, फिर भी वह इतना विनयशील और नम्र था।

बाद मे जब मैं शहर मे इधर-उधर घूमा, तब मैंने देखा कि वहाँ खाद्य की कोई कमी नहीं है। प्रवासियों को कबाब आदि सब चीजें मिल जाती थीं। हर जगह खाने की बहुतायत थी। काबुल से वापस लौटते समय मैंने देखा कि रास्ते बहुत खराब थे और बीच-बीच में बहुत गड्ढे पड़े हुए थे। मोटर मे बैठे-बैठे हम घुड-सवार होने का मजा लूट रहे थे। अपनी जान बचाने के लिए मैं अपनी जगह पर चिपककर बैठा था। मेरी दुर्दशा देखकर ड्राइवर ने कहा कि "जब हम तोरकम पहुँचेंगे, तब रास्ते बहुत सुन्दर मिलेंगे और फिर मोटर चलती है या नहीं, यह भी पता नहीं चलेगा।" उसी वक्त दूसरी दिशा से ५०-६० खाली ब्रिटिश लॉरियाँ आ रही थीं। ड्राइवर ने मुझे बताया कि "वे लारियाँ अकालपीडित हिन्दुस्तान के लोगों के लिए काबुल से मुफ्त में ५५० टन गेहूँ लाने जा रही हैं।" मैंने कहा—"यह एक अच्छा किस्सा दिखता है। मैं तुमसे एक सवाल पूछता हूँ। अफगानिस्तान मे तुम लोगों को खाने-पीने को काफी मिल जाता है। मोटरें भी अच्छी हैं। पर रास्ते इतने खराब हैं कि खाया हुआ आसानी से हजम हो जाता है। हिन्दुस्तान मे हम लोगों को भूखे पेट सोना पड़ता है। किन्तु हमारे लिए बहुत खर्चीले रास्ते बनाये गये हैं। इन दोनों में से तुम कौन-सी चीज पसन्द करोगे?" उसने फौरन जवाब दिया—"बेशक, हमेशा अफगानिस्तान ही।" यह ठीक है कि अफगानिस्तान मे अच्छे रास्ते नहीं, रेलवे नहीं, परन्तु लोगों को खाने के लिए काफी

और बढ़िया खुराक है। लोगों की प्राथमिक आवश्यकताओं के खयाल से अफगानिस्तान एक प्रगतिशील देश है और हिन्दुस्तान पिछड़ा हुआ देश है। यह देश पिछड़ा हुआ रह गया, क्योंकि राष्ट्र की सारी संपत्ति का स्रोत उस दिशा में बहाया गया, जो आदमी की आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर सकतीं। फौज के ऊपर तो हमने करोड़ों रुपया खर्च किया है, किन्तु शिक्षा के ऊपर नहीं। इसलिए हमारी योजना का मकसद लोगों की हालत बेहतर करना होना चाहिए, न कि सिपाहियों के बटन चमकदार बनाने का। इसी दृष्टिकोण से हमें सवाल को हल करना चाहिए। अक्सर नकद पैसे का अर्थशास्त्र हमें भुलावे में डाल देता है। वह हमारे सामने गलत दृष्टिकोण और गलत मकसद पेश करता है।

तीन सप्ताह पहले मैं उड़ीसा में था। वहाँ मैंने देखा कि एक वक्त जो बैल-घानियाँ चलती थीं, उनमें से बहुत-सी इस वक्त बन्द पड़ी हुई हैं। उनके बन्द होने का कारण पूछने पर मुझे बताया गया— "हम बैल कहाँ से लायें? वे तो सब फौज के पेट में चले गये।" वस्तुतः बड़ी-बड़ी कीमतें देकर इन बेचारे गरीब लोगों को फुसलाया गया। अब उड़ीसा से सरसों कानपुर भेजा जाता है और वहाँ से खाने के लिए तेल मँगाया जाता है। इसलिए केवल रुपयों-पैसों में किसी चीज की कीमत नहीं आँकनी चाहिए।

जब मैं पेशावर में था, तब मुझे पता लगा कि मर्दान में अंडे का वर्गीकरण करने और बेचने की एक समिति बनी हुई थी। यह समिति हिन्दुस्तान सरकार की ओर से चलायी जाती थी। उसका मकसद था क्वेटा, अंबाला, रावलपिंडी आदि तमाम फौजी छावनियों को अच्छे अंडे पहुँचाना। उनके लिए योजना बनाते समय मैंने जानना चाहा कि वहाँ निर्यात करने जितने अंडे पैदा होते हैं या नहीं। आप जानते हैं कि पठान बड़े मजबूत और हृष्ट-पुष्ट होते हैं। जिस प्रकार इधर के स्टेशनों पर आपको केले मिलते हैं, उसी प्रकार

रावलपिंडी से गुजरने के बाद आपको रेलवे स्टेशनों पर सब जगह उबाले हुए अंडे मिलते हैं। जब अंडों के आँकड़े मेरे पास लाये गये, तब मुझे पता लगा कि सारे प्रांत की पैदावार सबके लिए दस दिन चले, इतनी नहीं थी। और फिर भी अंडे प्रांत से बाहर, अंबाला, क्वेटा और दूसरी फौजी छावनियों पर भेजे जाते थे। प्रधानमंत्री से मैंने कहा—"अंडों की इस निर्यात का नतीजा क्या होगा, आप जानते हैं ? कुछ ही सालों में आपके बच्चों के शरीर पर केवल चमड़ी और हड्डी रह जायगी।" चाहे उसे एक पठान का बच्चा खाय या एक सिपहसालार, एक अंडा अंडा ही है। उसका खाद्य-तत्त्व दोनों के लिए एक ही है। इसलिए यदि वे पर्याप्त मात्रा में न मिलते हों, तो उनका निर्यात नहीं होना चाहिए। केवल पैसे के भुलावे में आकर सिलोन खाद्य पैदा करनेवाले से रबर पैदा करनेवाला बन गया, उड़ीसा ने अपने बैल गँवाये और सीमाप्रान्त अपने अंडे गँवा रहा है।

योजना का यह दृष्टिकोण मुझे बंगाल के अकाल के नतीजे पर से प्राप्त हुआ। आप जानते हैं कि बंगाल में ३० लाख लोग मर गये। यहाँ मैं अपनी एक निजी बात पेश करना चाहता हूँ। यह अकाल पड़ने के एक साल पहले अकाल की चेतावनी देने के लिए मुझे जेल भेजा गया। मुझे इसलिए जेल भेजा गया कि मैंने लोगों को जता दिया कि अब देश मे अकाल पड़ेगा और सरकार की मुद्रा-स्फीति की नीति की पोल खोल दी। मैंने बताया कि कागजी पैसे बरसाये जा रहे हैं और उनकी एवज में न सिर्फ अनाज, बल्कि दूसरे साल का बोने का बीज भी देश से बाहर भेजा जा रहा है। फलस्वरूप सिर्फ इस साल ही नहीं, बल्कि हर साल अकाल पड़ता ही रहेगा। इस पर ब्रिटिश सरकार ने सोचा कि मेरे निवेदनों से उनके युद्ध-प्रयत्न मे बाधा आयेगी, और उसने मुझसे कहा, "इस हालत मे तुम जेल के भीतर पड़े रहो।" जेल के वास्तव्य के

दरम्यान मैं सोचता रहा कि यह अकाल कैसे टाला जाय। खाद्य हमारी चिंता का प्रथम विषय होना चाहिए। उस वक्त मुझे यह सुझाई दिया कि खाद्य की दृष्टि से देश में हमें हर जगह स्वयंपूर्ण हिस्से निर्माण कर देने चाहिए।

ऐसा करते समय हमें अन्न की कीमत खाद्य की दृष्टि से ऑकनी चाहिए, न कि पैसे की दृष्टि से। इसलिए संतुलित आहार की दृष्टि से हमें शुरुआत करनी चाहिए। हिन्दुस्तान में लोग सामान्यतः अनाज से ही अपना पेट भरते है—अनाज से पूर्ण रूप में शरीर को आवश्यक खाद्य-तत्त्व नहीं मिलते । यदि हम खेती का आयोजन इस तरह करें कि हरएक गॉव अपने लिए संतुलित आहार पैदा करे, तो हमको आसानी से संतुलित आहार मिल सकता है। उस पर से प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक जमीन का हिसाब लगा सकते हैं। अखिल भारतीय पैदावार के औसत ऑकड़े प्राप्य है। वस्तुतः स्थान-स्थान पर इनमें फर्क पड़ेगा। यदि हम फी आदमी रोजाना १६ औंस अनाज रखें, तो हमारी कुल जमीन के ६५·२ प्रतिशत भाग में अन्न पैदा करना पड़ेगा। इसी तरह फी आदमी रोजाना ५ तोला दाल के हिसाब से आठ प्रतिशत जमीन दाल बोने के लिए लगेगी। इस पुस्तक में एक लाख की आबादी के लिए जमीन के बॅटवारे का कोष्ठक दिया गया है। उसमें अनाज, दाल, गुड़, तिलहन, तरकारी, फल आदि के लिए कितनी जमीन लगेगी, इसका हिसाब बताया गया है। यदि एक देहात या नजदीक के देहातों का एक समूह इस अनुपात में चीजें पैदा करे, तो लोगों की प्राथमिक आवश्यकता की पूर्ति होगी और इसलिए हमको ये चीजे पैदा करने पर उतारू होना चाहिए। यदि कोई कहता है कि मेरे पास इतनी एकड़ जमीन है और मैं उसमें तंबाकू पैदा करूँगा, तो उसे ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं है। फिर चाहे उसको उसमें अधिक पैसे क्यों न मिलते हो? जमीन एक सामाजिक पूँजी है और सामाजिक आवश्यकताओं

को ध्यान में रखकर उसका उपयोग किया जाना चाहिए। समाज में कई ऐसी चीजें हैं, जो व्यक्तिगत इच्छा के मुताबिक नहीं की जा सकतीं। मसलन रास्ते के दाहिनी ओर से आप गाड़ी नहीं चला सकते। जमीन पर व्यक्तिगत मालकियत आपकी भले ही हो, पर उसका उपयोग इस कदर होना चाहिए, जिससे हरएक को फायदा हो। इस खयाल से यहाँ एक सुझाव पेश किया है कि हरएक किसान को खेती की खास पैदावार के लिए लाइसेंस दिया जाना चाहिए। जिसको अलसी पैदा करने का लाइसेंस मिला है, वह तम्बाकू नहीं पैदा कर सकता, फिर चाहे उसको तम्बाकू से दसगुने दाम क्यों न मिलते हों।

खेती का आयोजन करना जरूरी है और वह आयोजन हमारे पेट की आवश्यकता के मुताबिक होना चाहिए। हमारी योजना में और राष्ट्रीय आयोजन-समिति और दूसरी संस्थाओं की योजनाओं में यही अंतर है। ये योजनाएँ कुदरती संपत्ति, जैसे खानें, लोहा, कोयला आदि से शुरुआत करती हैं, मानो, ये ही हमारे जीवन का आदि और अन्त हैं। किसी भी कारण से क्यों न हो, हमारे मुल्क में अकाल आते रहते हैं, इसलिए हमारी तमाम योजनाओं का केन्द्र-विन्दु हमारा पेट होना चाहिए।

किसीने मुझसे पूछा—"क्या आप कपड़ों की मिलों पर प्रतिबन्ध लगा देंगे ?" मैंने कहा—"नहीं, मैं उन पर प्रतिबंध नहीं लगाऊँगा। उन मिलों से मेरा कोई ताल्लुक ही नहीं। लेकिन मैं अपने ढंग से यदि योजना बनाता हूँ और उस सिलसिले में कपड़े की मिलें खतम होती हैं, तो मैं विवश हूँ।" मेरा आशय देहातियों को लगनेवाली पैदावार यथासंभव देहात में ही रखने की है। अतिरिक्त पैदावार ही बाहर से मँगायी जानेवाली आवश्यक चीजों के विनियोग में बाहर भेजी जानी चाहिए। मसलन यदि किसी खास देहात में रूई पैदा होती है, तो वहाँ से वह मिल में जाय और वहाँ से कपड़ा

बनकर देहात में आये, यह नहीं हो सकता। क्योंकि ऐसे विनियोग के सिलसिले में आपको हमेशा कुछ-न-कुछ वस्तु बाहर भेजनी ही पड़ेगी। यदि आप खाद्य पदार्थ बाहर भेजने के लिए उत्सुक नहीं हैं, तो आपको अपने फुरसत के समय में रूई में से कपड़े बना लेने चाहिए। अपनी खुराक अपने पास रखने का यही तरीका है। साथ-साथ आपको कपड़े तो मिल ही जाते हैं। इस तरह आपको दुगुना फायदा होता है। इसमें मिलवालों का नुकसान होता है, पर मैं उनके लिए लाचार हूँ। मैं गरीब ग्रामीणों के फायदे का काम नहीं छोड़ सकता। हमारी योजना ही गाँवों के उत्थान के लिए है। जब हम इन्हीं वस्तुओं से और इसी तरह काम शुरू करेंगे, तभी हम पायेंगे कि गॉव के लोग भोजन और कपड़े के बारे में स्वावलंबी बने है।

पैसे का अर्थशास्त्र

अब मैं पैसे के अर्थशास्त्र पर आता हूँ। पहले मैं कह चुका हूँ कि पैसे का अर्थशास्त्र हमारे दृष्टिकोण को धुँधला करता है। इसे रोकने के लिए हमारे पास क्या तरकीब है? वस्तु-विनिमय की सिफारिश मै नहीं करता। वह तो हमारी पुरानी संस्कृति का अंगभूत हिस्सा है ही। इस पद्धति से गॉववालों को आवश्यक सभी चीजें मिल सकती हैं। यह कोई नया सुझाव नहीं। इस योजना में जो सुझाव है, वह यह है कि हर गॉव में बहुधंधी सहकारी समिति (Multi-purpose Co-operative Society) कायम होनी चाहिए। वह समिति गाँव की पैदावार पर अपना कब्जा ले और सरकार को उचित ऐसी अन्य कुछ कार्रवाइयाँ, जैसे कि वस्तुओं का दर्जा ठहराना (grading) आदि करे और इन चीजों को देश के अभावग्रस्त भागों में भेजने आदि का काम करे।

जब समिति अपना संगठन करती है, तब दूसरी ओर किसान

का क्या हाल होता है? वह अपने कुटुम्ब की आवश्यकताभर गेहूँ रख लेता है और अतिरिक्त गेहूँ गॉव के सहकारी समिति में जमा कर देता है और उसके एवज में अपनी आवश्यकता की चीजें वहाँ से ले आता है। जमीन का लगान भी नकदी के बदले इसी तरह अनाज में भरा जा सकता है। आज नकद लगान देने की पद्धति से उन्हें जो काफी दिक्कतें उठानी पड़ती हैं, उनसे वह बरी हो सकता है।

नकद पैसे चीजों के सच्चे दामों के प्रतीक नहीं होते। एक आदमी के पास से दूसरे आदमी के पास जाने में पैसे का मूल्य भी बदल जाता है। एक गरीब आदमी के हाथ मे और एक अमीर आदमी के हाथ में एक रुपये का मूल्य एक-सा कभी नहीं होता। इस प्रकार एक के पास से दूसरे के पास पैसा जाने से या तो राष्ट्रीय संपत्ति में वृद्धि होती है या वह घटती है। यों तो दोनों के हाथ में रुपया रुपया ही दिखाई देता है, पर व्यवहार मे उसकी कीमत बदल जाती है। एक गरीब आदमी के हाथ मे रुपया चार-पॉच दिन की खुराक का मूल्य रखता है, जब कि एक अमीर आदमी के हाथ में वह शायद सिर्फ एक सिगार का मूल्य रखता हो। इस तरह एक गरीब आदमी के हाथ से अमीर आदमी के हाथ मे जाने से रुपये का मूल्य काफी हद तक घट जाता है। याने गरीब आदमी के पास से अमीर आदमी के पास जाने में पैसे की कीमत घट जाती है। इसके विपरीत अमीर के पास से गरीब के पास जाने मे पैसे की कीमत बढ जाती है। अत हमारे आयोजन में हमे देखना चाहिए कि पैसा ऐसे हाथों मे न जाने पाये, जहाँ उसकी कीमत घट जाती हो। बहुधंधी सहकारी समिति यही करने की कोशिश करती है। समिति किसानों से अनाज इकट्ठा करेगी और उसमे से सरकार का महसूल अनाज के रूप मे भरेगी। सरकारी कर्मचारियों को भी सरकारी खाते मे से संतुलित आहार के योग्य अनाज आदि

खाद्य चीजें वह देगी। इतना सब करने पर आखिर में सरकार और समिति के बीच में हिसाब की दृष्टि से लेन-देन करने का बहुत थोड़ा ही हिस्सा रह जायगा और वह प्रदेशों के बीच अतिरिक्त पदावार के परस्पर विनियोग से पूरा किया जा सकता है। यदि ऐसा हुआ, तो नकद पैसे की बुराई को नाबूद नहीं, तो कम अवश्य किया जा सकता है। ऐसा होने पर वस्तु का नकद के रूप में जो गलत दाम आज ठहराया जाता है, उसके बदले में वस्तु का वस्तु के रूप में सच्चा दाम निश्चित होगा।

राजकीय दृष्टिकोण

अब हम लोकशाही के खयाल से इसका विचार करें। हिन्दुस्तान में राज्य के बारे में कुछ विचार बने हुए हैं। हिंदुस्तान पहले से ही स्वयंशासित और स्वायत्त गाँवों का देश रहा है। मनुष्य-समाज में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ होती हैं : एक दूरदृष्टि की अपेक्षा करनेवाली और दूसरी संकुचित दृष्टि की। हममें से बहुत-से लोग दूरदृष्टि से विचार करने में असमर्थ होते हैं, क्योंकि उसमें बिना फलप्राप्ति के लम्बे अर्से तक परिश्रम करते ही रहना पड़ता है और इतना लम्बा ठहरने की हमारी इच्छा नहीं होती। हम सब तात्कालिक लाभ चाहते हैं। हम खाना-पीना और मजा करना चाहते हैं। सौ में से निन्यानवे लोग ऐसे अदूरदृष्टिवाले होते है, किन्तु ऐसी कई बातें रहती हैं, जो सारे समाज के हित के खयाल से करनी पड़ती हैं और इनमें दूरदर्शिता अपेक्षित है। लोकशाही का यही कर्तव्य है। यदि लोकशाही को सफल बनाना हो और बहुसंख्यक जनता की भलाई सिद्ध करनी हो, तो राज्य की सत्ता दूरदर्शी लोगों के हाथ में रहनी चाहिए। अदूरदर्शी लोग समाज के लिए खतरा रूप हैं। उनके हाथ में यदि राज्य की बागडोर गयी, तो वे युद्ध निर्माण करेंगे। इस दृष्टि से देखा जाय, तो इंग्लैंड और अमेरिका किसी हालत में लोकसत्ताक साबित नहीं हो सकते। यहाँ पर तो एक ही की हुकूमत

का अमल होता है। इन देशों में युद्ध के खतरे के समय किस प्रकार का राज्य प्रचलित था, लोकशाही का या नौकरशाही का? बेशक, वहाँ पर खुलेआम तानाशाही जारी थी। यह कोई योगायोग नहीं था, बल्कि वहाँ की परिस्थिति का स्वाभाविक फल था। इन देशों में बड़े-बड़े कारखानों के जरिये माल उत्पन्न किया जाता है। कारखाने के मानी हैं, केन्द्रीभूत सत्ता और उसका स्वाभाविक परिणाम है, निरंकुश सत्ता। अर्थकारण में निरंकुश सत्ता रखकर राजकारण मे आप लोकशाही नहीं हासिल कर सकते। ऐसा दावा करना लोगों को धोखा देना है। अर्थकारण में लोकशाही स्थापित करनी हो, तो उसकी नींव देहातों में किया गया व्यक्तिगत उत्पादन ही होना चाहिए। वस्तुतः सिंचाई, सड़कें और ऐसे बड़े-बड़े काम सामूहिक तौर से करने पड़ेंगे और ऐसे कामों के लिए दूरदर्शी लोगों की नियुक्ति आवश्यक होगी। अतः सभी प्रधान और सभी सरकारी कर्मचारियों को दूरदर्शी होना चाहिए। यदि वे हर चीज को फायदे की दृष्टि से देखें, तब तो मुझे कहना पड़ेगा कि वे जिम्मेवारी की जगह पर बैठने के काबिल नहीं हैं। दूरदृष्टि मे पुसाने का सवाल नहीं खड़ा होता। उससे लोगों का भला होता है या नहीं, यह देखना पडता है। सरकार कोई व्यापारी संस्था नहीं है। उसकी हस्ती मुनाफे के लिए या नौकर पैदा करने के लिए नहीं है। सरकार का कर्तव्य लोगों की सेवा करने का है। यदि लोगों की सेवा और भलाई होती है, तो कीमत या खर्च का सवाल उठना ही नहीं चाहिए। वह कार्य तो होना ही चाहिए। यह मूलभूत सिद्धान्त हमेशा स्मरण रखना चाहिए। व्यक्तिगत हिसाब और राजस्व (पब्लिक फायनेन्स) मे बहुत बड़ा अन्तर है। राजस्व दूरदर्शी होता है। लोकशाही का आयोजन करते वक्त हरएक नागरिक को इसका ज्ञान करा दिया जाता है कि पूरे आयोजन मे उसका हिस्सा कहाँ और कितना है।

उकताहट

कुछ लोगों का कहना था कि विकेंद्रीकरण का तत्त्व मान्य करने से काम से उकताहट पैदा होगी। लेकिन मेरी समझ में यह गलत शब्द-प्रयोग है। उकताहट तो किसी भी कारखाने में प्रतिवर्ष, लगातार, प्रतिदिन आठ घंटे, एक ही कार्य करने में है। केन्द्रीभूत उद्योगों में तो उकताहट कूट-कूट कर भरी हुई है। उकताहट तो कपड़े की मिलों में है, जहाँ एक मजदूर मशीन की देखभाल करता है, जिसे विचार करने की कोई जरूरत ही नहीं रहती और इसलिए वह उकता जाता है।

उकताहट तो आखिरकार आपके दृष्टिकोण पर अवलंबित रहेगी। यदि आपको किसी काम में रुचि है, तो उससे आपका जी नहीं उकतायेगा, पर उसी काम में यदि दूसरे की रुचि न होगी, तो वह उससे उकता जायगा। मातृत्व की भावना और शिशु-संगोपन एक उदात्त तत्त्व समझा जाता है, लेकिन आजकल की अमेरिकन स्त्रियाँ उसे एक बेगार समझती हैं। उनका जी तो नाच-गाने, पार्टियों और सज-धजकर घूमने में ज्यादा लगता है। शिशु-संगोपन का कार्य एक नौकरानी पर छोड़ दिया जाता है। वह उसे अपना एक धन्धा समझती है और लगन के साथ काम करती है। उसके लिए वह कार्य उकतानेवाला नहीं होता, लेकिन वह उसे 'मनोरंजन' की दृष्टि से देखती है। बुनियादी तालीम की यही खासियत है। इसी सृजनात्मक शक्ति का हम लोगों को पूरा-पूरा लाभ उठाना है। प्रचलित तालीम और बुनियादी तालीम में यही बुनियादी फर्क है! जीवन में यदि यह सृजन की भावना न हो, तो दुनिया का कोई भी कार्य उकतानेवाला मालूम होगा। बच्चों के प्रति यदि लगन न हो, तो शिक्षक का कार्य उकतानेवाला सिद्ध होगा। इसलिए उकताहट की समस्या उद्योग के केन्द्रीकरण या विकेन्द्रीकरण से हल न होगी। जनता को सामाजिक कार्य की शिक्षा देने से और

सामाजिक कार्य के प्रति लगन उत्पन्न करने से ही यह समस्या हल हो सकती है।

ऐतिहासिक पार्श्वभूमि

ग्रामोद्योग, चरखा-संघ और समय-समय पर निर्मित इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं की ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। सरकारी सहायता ज्यादा न मिलने से इन संस्थाओं का कार्य कुछ बातों तक ही मर्यादित रखना पड़ा। अखिल भारतीय ग्रामोद्योग-संघ द्वारा कृषि जैसा बुनियादी ग्राम-उद्योग क्यों न उठाया गया—ऐसा कई लोग हमसे पूछते हैं। हम इसका यही उत्तर देते आये हैं कि आज की हालत में वह हमारे लिए संभव नहीं। कृषि के लिए बहुत दूरदर्शी योजनाएँ बनानी पड़ती हैं, जो कि एक सरकार के लिए ही संभव है। इसीलिए हम लोगो को तेलघानी, गुड बनाना, आटा पीसना, धान कूटना या हाथ का कागज बनाने जैसे विभिन्न कार्यों को शुरू करना पड़ा और लोग समझते रहे कि इसमें कोई सुसूत्रता नहीं है।

योजना

मनुष्य मात्र की आर्थिक व्यवस्था में अगर कृषिकार्य को केंद्र माना गया, तो इन संघों की कार्य-प्रणाली ही योग्य प्रतीत होगी। यदि आप धान बोयेंगे, तो खाने के पहले उसे कूटना होगा, गेहूँ भी पीसना होगा। यदि आप तिल बोयेंगे, तो उसका तेल आप स्थानिक घानी से ही निकाल सकेंगे। सारांश, उपर्युक्त संघ के काम हमारी नयी व्यवस्था मे उपयुक्त ही साबित होंगे।

सौभाग्य से आज कांग्रेस की सरकारें अधिकारारूढ हैं और उम्मीद की जाती है कि उनका कार्य योग्य दिशा मे होगा और उस हालत मे इन संघों की आवश्यकता प्रतीत न होगी।

इसलिए यदि नयी आर्थिक व्यवस्था हिंदुस्तान के लिए मान्य की

जानेवाली हो, तो उसकी शुरुआत किसान से होनी चाहिए और क्रमशः उसी नींव पर समस्त देश की आर्थिक व्यवस्था करनी चाहिए। इस व्यवस्था से शायद हम लोग अमेरिका या इंग्लैण्ड जैसे धनवान् न होंगे, लेकिन देश में खाद्य पदार्थों की कमी न रहेगी।

अर्थात् वस्त्र और खाद्य पदार्थों की स्वयंपूर्णता हिन्दुस्तान की किसी भी योजना की बुनियाद होनी चाहिए। प्रत्येक गाँव वस्त्र और खाद्य पदार्थों की दृष्टि से स्वावलंबी न रहा, तो स्वराज्य मिलना बेकार होगा। गाँव के हरएक व्यक्ति को उचित खुराक और कपड़ा मिलना ही चाहिए। टाटा-बिड़ला की या अन्य नयी योजनाएँ अमल में लाने के लिए करोड़ों रुपयों की जरूरत है, जो कि आपके पास नहीं हैं। लेकिन इस नयी योजना में एक पाई की भी आवश्यकता नहीं है। इस नयी व्यवस्था के लिए जरूरत है जनता की कर्तव्यशक्ति को उचित मार्ग दिखाने की और उस कार्यशक्ति का योग्य लाभ उठाने की।

कार्यकर्ता

लेकिन इन सब बातों की सफलता इन कार्यों को हाथ में लेनेवालों की निःस्वार्थता पर निर्भर है। कार्यकर्ताओं में स्वार्थ रहा, तो करोड़ों की मेहनत का नाजायज लाभ उठाया जायगा। इसीलिए हम कांग्रेस सरकार के बारे में कहते हैं कि कई जगह काट-छाँट होनी चाहिए। पिछली कांग्रेस सरकार में वेतन ५०० रुपये माहवार तक उतार दिया गया था, लेकिन इस वक्त उसे बढ़ा दिया गया है, क्योंकि उनकी आवश्यकताएँ बढ़ गयी हैं। इसमें स्वार्थ की बू आती है। हम लोगों को किसान के जीवन के स्तर तक उतरना पड़ेगा। गाँवों के लोग महलों में नहीं रहते, इसलिए हमें भी महल त्यागना होगा।

कुछ रोज पहले गाँव में एक भाई से मेरी मुलाकात हुई। जिस

सच्ची ब्राह्मण संस्कृतिवाले हैं। महात्मा गांधी का माहात्म्य इसी पर निर्भर है। गांधीजी आज अमेरिका गये, तो काफी भीड़ उन्हें देखने उपस्थित होगी। लेकिन हिन्दुस्तानी जिस श्रद्धाभाव से इकट्ठे होते हैं, वह श्रद्धाभाव अमेरिकावासियों में न दीखेगा। हम लोगों के लिए गांधीजी इसलिए पूज्य हैं कि न तो उनका निजी कुछ है और न उनके किसी कार्य में उनका स्वार्थ है। यही निःस्वार्थ सेवा कांग्रेस सरकार को पूरी ताकतवर बना सकती है।

इसलिए सर्वप्रथम प्रत्येक व्यक्ति का दृष्टिकोण बदलना होगा। उसी वक्त हम लोगों को असली स्वराज्य—आर्थिक स्वराज्य जैसा कि मैंने वर्णन किया है—मिल सकता है। उसी हालत में हरएक को भरपेट खाना मिलेगा। दरिद्र देश में सबके लिए पहले खाने और कपड़े की व्यवस्था होनी चाहिए। अर्थात् किसी भी नयी व्यवस्था में कृषि-सुधार को सबसे ज्यादा महत्त्व देना चाहिए। आप कांग्रेसवाले हों या और किसी पक्ष के हों, लेकिन यह समस्या प्रथम हल करनी पड़ेगी। कुछ देशभक्तों से या गांधीजी के चाहनेवालों से या सिर्फ कांग्रेस सरकार की संलग्नता से यह काम न हो सकेगा।

जागतिक प्रतिक्रिया

सिर्फ इसीके जरिये दुनिया में शान्ति प्रस्थापित हो सकती है। हिंदुस्तानियों का चीन पर बहुत प्रभाव है, वह इसलिए नहीं कि हम एटम बम बनाते हैं। लेकिन वह भगवान् बुद्ध के कारण है। ऐसा ही प्रभाव निर्माण करना हमारा मकसद है। हम एक जागतिक शक्ति बनना चाहते हैं, इसलिए हमें ग्रामों से सुधार शुरू कर ऊपर आना चाहिए। सिर्फ अपनी ही नहीं, दुनिया के सामने जो समस्या आज है, वह इसी तरीके से हल हो सकती है। इसलिए सत्तावालों से मैं अपील करता हूँ कि आप निःस्वार्थ भाव से काम करें और इस योजना को अमल में लायें। यह राष्ट्र को एक सच्ची देन होगी।

प्रकार के बॅगले में मिनिस्टर रहते हैं, उसी प्रकार के एक बड़े सजे हुए बॅगले में वह रहता था। वहाँ बिजली और पानी खींचने के पम्प की भी व्यवस्था थी। और भी कई किस्म की आधुनिक सुख सामग्री की वस्तुएँ वहाँ मौजूद थीं। उस पादरी के पास ३०० एकड़ जमीन थी। उसके बॅगले से थोड़ी दूर मिट्टी के कुछ झोंपड़े बने थे, जिनमें कुटुम्बों के रहने की नमूनेदार व्यवस्था थी। हरएक कुटुंब को जोतने के लिए थोड़ी जमीन और पालने के लिए मुर्गियाँ दी गयी थीं। पादरी ने मुझसे सवाल किया, "हम लोग इन सब बातों में काफी पैसा खर्च करते हैं, तिस पर भी गॉववालों पर उसका ज्यादा असर नहीं पडता। देहातियों के हृदय तक हम लोग जा नहीं पाते। क्या इसके लिए आप कोई उपाय बता सकते हैं?" मैंने कहा : "उपाय काफी सीधा और सरल है और वह यह है कि सर्वप्रथम आप अपना बॅगला जला डालिये। आप पश्चिम से यहाॅ आये हैं। आपको यहाँ की परिस्थिति मालूम नहीं। आप लोगों को हरएक बात रुपये, आने, पाई में गिनने की आदत हो गयी है। लेकिन यहाँ के लोग इन्हीं कपड़ों में हमारी कद्र करते हैं। यदि हमारा कपड़ा दो जगह अधिक फटा हो, तो हमारी कुछ अधिक कद्र होगी। यदि हम कुरता पहनना छोड़ देंगे, तो वे हमारे पीछे चलने लगेंगे और हम लॅगोटी लगा लेंगे, तो वे हमारे पैर पड़ेंगे। हमारी संस्कृति रुपये-पैसों में नहीं गिनी जाती। इसलिए यदि आप इन लोगों की सेवा करना चाहते हैं, तो आपको यह महल त्यागना पड़ेगा। यदि उनकी झोपड़ियाॅ २५०) में बनती हों, तो आपको १२५) की झोपड़ी मे रहना चाहिए। आप ऐसा करेंगे, तभी वे आपकी बातें सुनेंगे। इसीसे आप लोगों के प्रति लोगों को विश्वास पैदा होगा और वे आपकी योजना को खुशी से अपनायेंगे। इसके लिए बहुत सारे खर्च की आवश्यकता नहीं।" आप सोचते हैं बसा यह देश जंगली नहीं है। जनेऊ पहननेवाले कई हाकिम हजारों रुपये कमाते हैं, लेकिन उन्हें ब्राह्मणदेवता समझकर पूज्य नहीं माना जाता। हम

सच्ची ब्राह्मण संस्कृतिवाले है। महात्मा गांधी का माहात्म्य इसी पर निर्भर है। गांधीजी आज अमेरिका गये, तो काफी भीड़ उन्हें देखने उपस्थित होगी। लेकिन हिन्दुस्तानी जिस श्रद्धाभाव से इकट्ठे होते हैं, वह श्रद्धाभाव अमेरिकावासियों में न दीखेगा। हम लोगों के लिए गांधीजी इसलिए पूज्य हैं कि न तो उनका निजी कुछ है और न उनके किसी कार्य में उनका स्वार्थ है। यही निःस्वार्थ सेवा कांग्रेस सरकार को पूरी ताकतवर बना सकती है।

इसलिए सर्वप्रथम प्रत्येक व्यक्ति का दृष्टिकोण बदलना होगा। उसी वक्त हम लोगों को असली स्वराज्य—आर्थिक स्वराज्य जैसा कि मैंने वर्णन किया है—मिल सकता है। उसी हालत में हरएक को भरपेट खाना मिलेगा। दरिद्र देश में सबके लिए पहले खाने और कपड़े की व्यवस्था होनी चाहिए। अर्थात् किसी भी नयी व्यवस्था में कृषि-सुधार को सबसे ज्यादा महत्त्व देना चाहिए। आप कांग्रेसवाले हों या और किसी पक्ष के हों, लेकिन यह समस्या प्रथम हल करनी पड़ेगी। कुछ देशभक्तों से या गांधीजी के चाहनेवालों से या सिर्फ कांग्रेस सरकार की संलग्नता से यह काम न हो सकेगा।

जागतिक प्रतिक्रिया

सिर्फ इसीके जरिये दुनिया में शान्ति प्रस्थापित हो सकती है। हिंदुस्तानियों का चीन पर बहुत प्रभाव है, वह इसलिए नहीं कि हम एटम बम बनाते हैं। लेकिन वह भगवान् बुद्ध के कारण है। ऐसा ही प्रभाव निर्माण करना हमारा मकसद है। हम एक जागतिक शक्ति बनना चाहते हैं, इसलिए हमें ग्रामों से सुधार शुरू कर ऊपर आना चाहिए। सिर्फ अपनी ही नहीं, दुनिया के सामने जो समस्या आज है, वह इसी तरीके से हल हो सकती है। इसलिए सत्तावालों से मैं अपील करता हूँ कि आप निःस्वार्थ भाव से काम करें और इस योजना को अमल में लायें। यह राष्ट्र को एक सच्ची देन होगी।

◆ ◆ ◆

उद्योगों के प्रकार : २ :

अब प्रश्न यह है कि उद्योगों का संगठन और उनका संचालन कैसे किया जाय। छोटे उद्योग कौन-से हैं और बड़े उद्योग कौन-से हैं, इसे समझ लेना आवश्यक है। उन दोनों की कार्य-पद्धति कैसी होती है, यह भी देखना पड़ेगा। अर्थशास्त्र के दो मुख्य सिद्धांत—संपत्ति का केंद्रीकरण और उसका विकेंद्रीकरण—अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। केंद्रीय व्यवसाय मे धन का केन्द्रीकरण होता है और विकेंद्रीकरण की स्वाभाविक प्रवृत्ति उचित वितरण की ओर है। प्रचलित सामाजिक व्यवस्था और अपने देश की स्थिति को देखते हुए अगर धन और अधिकार का केन्द्रीकरण टालना है, तब तो केन्द्रित व्यवसायों को बन्द करना ही पड़ेगा और विकेन्द्रित पद्धति को अपनाना पड़ेगा, ताकि संपत्ति का उचित बँटवारा होता रहे।

प्रथम धनोपार्जन केन्द्रीभूत करना और तत्पश्चात् सरकार के जरिये उसका वितरण करना, यह भी एक तरीका बताया जाता है। रूस आज इसी नीति का अवलम्ब कर रहा है। लेकिन धन के वितरण का अधिकार केन्द्रित होना भी एक खतरनाक बात है। केन्द्रीकरण संपत्ति का हो या सत्ता का, दोनों ही बुरे हैं। इंग्लैंड, अमेरिका मे धन केन्द्रित हो रहा है और रूस मे धन के वितरण का अधिकार केन्द्रीभूत होता है। हिन्दुस्तान एक गरीब देश है, इसलिए उसमे आज धनोत्पादन और उसका वितरण साथ-साथ ही होना चाहिए। अर्थात् जहाँ रोजमर्रा की उपयोग की चीजों के उत्पादन का सवाल हो, वहाँ केन्द्रित पद्धति को एकदम बन्द करना पड़ेगा।

केन्द्रित व्यवसायों का स्थान

केन्द्रीभूत व्यवसाय उसी वक्त चलाये जायँ, जब कि उन्हें चलाने-वालों का उद्देश्य मुनाफाखोरी या धन इकट्ठा करना न हो। केन्द्रीभूत व्यवसाय में धन के केन्द्रित होने की जो स्वाभाविक प्रवृत्ति है, उसे ही रोकना चाहिए। विद्युत् उत्पादन, यातायात के साधन, डाकखाने आदि सरकार के जरिये चलाये जाने चाहिए और वे सब सेवाभाव से चलाये जाने चाहिए। सरकार की ओर से चलाये जानेवाले इस प्रकार के व्यवसायों में जो अपव्यय होता है, उसे स्वाभाविक मानकर क्षम्य समझना चाहिए। धन के केन्द्रीकरण में अधिक अपव्यय होता है। हमें मालूम है कि धन और अधिकार का केन्द्री-भूत होना युद्ध-परिस्थिति निर्माण करता है।

औद्योगीकरण की समस्या पर आपने कई तकरीरें सुनी होंगी। पिछले चालीस वर्ष की जापान की आर्थिक उन्नति भी आपके सामने है। वर्तमान शताब्दि के शुरू में जापान डींग मारता था कि हम औद्योगीकरण करेंगे, पर पाश्चात्य राष्ट्रों की पद्धति से नहीं, बल्कि दूसरे तरीकों से। तिस पर भी आज जापान की हालत देखिये। जहाँ सत्ता और संपत्ति केन्द्रित हुई कि यह परिणाम सुनिश्चित ही है। मैं जापान, इंग्लैड, अमेरिका और रूस को दोष नहीं देता। दोष है केन्द्रीभूत औद्योगीकरण का। लाचारी के बतौर केन्द्रीभूत उद्योग रखे जायँ। यह तो एक जरूरी जहर है। जैसे हकीम के बताने पर आप जहर भी दवा के तौर पर खाते हैं, उसी प्रकार केन्द्रित व्यवसायों का होना चाहिए। ये व्यवसाय स्वभावतः समाज-विघातक हैं। इसलिए समाज की दृष्टि से ही कोई उद्योग आवश्य-कतानुसार केन्द्रित होना चाहिए। इसकी मर्यादा क्या हो सकती है? इसकी मर्यादा यही है कि समाज को तो उसकी जरूरत हो और किसी एक व्यक्ति को देने पर उसे ठेके का स्वरूप मिल जाता हो। उदाहरणार्थ, पानी आदि का इन्तजाम (Water-Supply) हमेशा सरकार के अधीन रखा जाना चाहिए।

लागत और लाभ

केन्द्रित उद्योग में खर्च कम लगता है और चीजें सस्ती बनती हैं, ऐसा कई लोगों का मत है। लेकिन यह बात सर्वदा सत्य नहीं है। रेलवे, डाक, विद्युत्-उत्पादन, सिंचाई आदि लोकोपयोगी केन्द्रित उद्योग अगर सेवाधर्म के तत्त्व पर चलाये जायँ और अगर उनका मूल उद्देश्य मुनाफाखोरी न हो, तो ये काफी उपयुक्त हो सकते हैं। सरकार शासित उद्योगों में उतनी मुनाफाखोरी नहीं होती, जितनी कि व्यक्तिगत उद्योगों में होती है। व्यक्तिगत व्यवहार में लाभ उठाने की प्रवृत्ति ज्यादा होती है। उत्पादन पर लागत कम करने का सीधा तरीका नौकरों का वेतन कम करना, कच्चा माल सस्ता खरीदना और अन्य आवश्यक खर्च कम करना आदि माना जाता है। अर्थात् इसमें एक व्यक्ति को धनवान् बनाने की गरज से दूसरों को गरीब बनाया जाता है। परिणामस्वरूप धन का अनुचित वितरण होता है।

परन्तु ग्रामोद्योगों में यह बात नहीं है। कीमत थोड़ी ज्यादा लगने पर भी मूल उद्देश्य मुनाफाखोरी न होने से धन का उचित वितरण होता है। अगर आपका उद्देश्य धन का उचित वितरण है, तब तो आपको ग्रामोद्योगी वस्तुओं की ज्यादा कीमत की पर-वाह न करनी चाहिए।

कीमत काबू में रखना

वस्तुओं की उचित कीमत तय करने के पहले उद्योग किस प्रकार का है, यह देखना चाहिए। छोटे और बड़े पैमाने पर चलनेवाले उद्योगों को एक ही दृष्टि से देखना गलत होगा। किसी भी उद्योग पर कंट्रोल करने के पहले उस उद्योग का स्वरूप समझ लेना जरूरी है। प्रत्येक प्रकार के उद्योग पर कंट्रोल करना उपयुक्त न होगा। जब उद्योग स्वभावतः केंद्रित हों और अगर उनमें पूँजी ज्यादा

लगती हो, तो उसका केंद्रित होना ही अच्छा होगा। खानों आदि जैसे उद्योगों में काफी पूँजी लगती है, काफी संख्या में मजदूर रखने पड़ते हैं और सभी बातें बड़े पैमाने पर करनी होती हैं, इसलिए ऐसे व्यवसाय हमेशा सरकार को ही उठाने चाहिए।

उद्योगों में लोकशाही

प्रजातंत्र शासित देश में समाज-विघातक प्रवृत्तियों को स्थान न होना चाहिए। कपड़े की मिलें प्रजातंत्र के सिद्धान्तों के खिलाफ चलती हैं, क्योंकि वहाँ का मिल-मालिक अपने क्षेत्र में सर्वशक्तिमान् होता है और हजारों मजदूरों को उसके इशारे पर चलना पड़ता है। इस राजकीय दृष्टि से भी इस तरह के केन्द्रित उद्योग अनिष्टकारक हैं।

स्पर्धा याने जंगली कायदा। देश की समाज-व्यवस्था सहयोग पर अधिष्ठित होनी चाहिए। स्पर्धा समाप्त करना और सहयोग का तत्त्व अमल में लाना, यही हमारा ध्येय होना चाहिए और यह ध्येय सिर्फ कीमत काबू मे लाने से न सधेगा।

रोग-परीक्षा के बाद जिस प्रकार वैद्य रोगी को जहर भी दवा की बतौर खिलाता है, उसी प्रकार व्यवसाय की अच्छी तरह जाँच होने के पश्चात् यह तय होना चाहिए कि उसे केन्द्रित करना है या विकेन्द्रित। गांधीजी यंत्रों के खिलाफ नहीं हैं, यद्यपि वे यह जरूर चाहते हैं कि मनुष्य यंत्रों का गुलाम न बने। मनुष्य का यंत्रों पर काबू खो बैठना सब किस्म के झगड़े और युद्धों की जड़ है।

हिंसा और व्यवसाय

अर्थशास्त्र की पुस्तकों में माँग और पूर्ति के सम्बन्ध में बहुत कुछ बताया जाता है। लेकिन प्रत्यक्ष व्यवहार में इन तत्त्वों का कहीं पता नहीं चलता। प्रत्यक्ष में तो यंत्रों से ज्यादा-से-ज्यादा चीजें बनायी जाती हैं, चाहे माँग हो या न हो। उदाहरणार्थ, एक जूते का

कारखानेवाला यह जानते हुए भी कि ३०० जोड़े जूतों की जरूरत है, ५०० जोड़े जूते बनवाता है, क्योंकि उनकी बनवाई का खर्च कम होता है। वह अपने मुनाफे को मद्देनजर रखकर उत्पादन-खर्च कम-से-कम करने की कोशिश में अधिक जूतों की जोड़ियाँ बना डालता है। माँग के हिसाब से ज्यादा जूते बनने के पश्चात् वह नये बाजार ढूँढता है। अर्थात् मनुष्य अर्थशास्त्र के तत्त्वानुसार नहीं चलता, लेकिन उसकी मशीन की ताकत के अनुसार चलता है। युद्ध प्रायः दूसरे देशों को जीतकर ज्यादा बनी हुई चीजों के लिए बाजार बनाने की गरज से होते हैं। प्रथम ज्यादा वस्तुएँ बनती हैं, पश्चात् बदूक की ताकत से ग्राहक ढूँढ़े जाते हैं। अर्थात् केन्द्रित व्यवसाय ही युद्ध का कारण हो गया। इसलिए इन उद्योगों को कुछ विवेकपूर्ण मर्यादाएँ चाहिए।

चमड़ा कमाने की प्रक्रिया में कई बातें बड़े पैमाने पर करनी पडती हैं। ऐसे मौकों पर मैं जरूर कहूँगा कि ऐसे काम बड़े पैमाने पर करो, पर व्यक्तिगत रूप में नहीं, बल्कि सहकारी तौर पर करो। क्रोम का चमड़ा बनवाना हो, तो उसे विविध उद्देश्यों की सहकारी कमिटी के मार्फत चमार को लागत कीमत पर चमड़ा देने की दृष्टि से बनवाना चाहिए। इसी प्रकार अन्य कई उद्योग ऐसे हैं, जो व्यक्तिगत रूप से नहीं किये जा सकते। यदि १६००° तापमानवाली भट्ठी तैयार करनी हो, तो उसमें काफी पैसा लगेगा और शायद बिजली की भी जरूरत पड़ेगी। मेरा मूल विरोध मुनाफाखोरी से है। यदि आप कारखानों के लिए क्रोम देने की गरज से क्रोम बनाना चाहें, तो मैं कहूँगा "उसे मारो गोली।" आप अपने काम के लिए बिजली का उपयोग कर सकते हैं, पर मुनाफे के लिए नहीं। किसी प्रकार का शोषण न होना चाहिए। इस प्रकार कौन-से व्यवसाय केन्द्रीभूत होने चाहिए और हम लोग विकेन्द्रीकरण के पक्ष मे क्यों हैं, इसका साधारण रीति से विवेचन किया गया है।

◆◆◆

[दूसरा खण्ड]

योजना

प्रास्ताविक

मानव-समाज की हरएक प्रवृत्ति के दो दृष्टिकोण हुआ करते हैं—दीर्घ दृष्टिवाले और लघु दृष्टिवाले। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसे कार्य का फल तुरंत मिले। उसकी दिलचस्पी ऐसे किसी कार्य में नहीं रहती, जिसके द्वारा बाद में आनेवाले लोगों को लाभ हो। वह निकट भविष्य के कम लाभ से भी संतुष्ट होगा, पर सुदूर भविष्य के अधिक लाभ के कार्य करने को तैयार न होगा। इसलिए सम्पूर्ण मानव-समाज की भलाई के लिए आवश्यक हो जाता है कि कुछ लोगों के जिम्मे ऐसी बातों पर विचार और अमल करने का काम दिया जाय, जिनका लाभ टिकाऊ पर अधिक दिनों के बाद मिलनेवाला हो। राष्ट्रीय सरकार का कर्तव्य यही है।

अनुसंधान, प्रयोग, समाचार-वितरण जैसे आवश्यक कार्य एक मामूली नागरिक की शक्ति के बाहर के हैं। इसलिए ऐसे कार्य भी सरकार के जिम्मे होने चाहिए। क्योंकि उसके पास कार्यकर्ता और कार्य-साधनों की कमी नहीं रहती।

जहाँ तक उत्पादन बढ़ाने का प्रश्न है, लोग समझते हैं कि हम केंद्रित रूप से बड़े-बड़े आधुनिक यंत्रों और कलों को लाकर देश की आर्थिक स्थिति सुधार सकेंगे; परन्तु इस बात को मान लेने के पहले इस पर जरा गौर करने की जरूरत है। उत्पादन का आर्थिक संगठन करने के लिए कई बातें देखी जाती हैं। इन बातों में स्थान

हैं—देश में उपलब्ध प्राकृतिक वस्तुएं, पूँजी और मजदूर। विभिन्न परिस्थितियों में इनका अलग-अलग सामंजस्य कारगर होता है। औद्योगिक क्रांति के समय ब्रिटेन में पूँजी की कमी नहीं थी। इसीलिए उनके प्रत्येक उत्पादन-क्षेत्र में पूँजी की महत्ता दिखाई देती है। अमेरिका में मानव-शक्ति कम थी, इसलिए वहाँ श्रम बचाने के लिए बनायी गयी मशीनों का प्राधान्य रहा। यदि उनको हम अपने यहाँ भी बरतने लग जायँ, तो साफ है कि जन-शक्ति की कम आवश्यकता पड़ेगी और बेकारी बढ़ेगी। इसलिए हमारे देश में, जहाँ पूँजी कम और जन-शक्ति अधिक है, इंग्लैण्ड और अमेरिका की नकल करना बड़ी गलत बात होगी।

मनुष्य स्वयं एक बड़ी मशीन है। मनुष्य में और यान्त्रिक कलों में अंतर केवल इतना ही है कि इससे चाहे काम लो या न लो, यदि उसे जिंदा रखना है, तो उसे भोजन देना ही पडेगा। इसलिए चाहे हम यंत्रादि के द्वारा ही क्यों न उत्पादन करें, लोगों को भोजन की आवश्यकता तो पड़ेगी ही। इसलिए अपने देश में पायी जाने-वाली परिस्थिति का सम्यक् उपयोग करने के लिए जरूरी हो जाता है कि हम उत्पादन के लिए अधिक-से-अधिक मानव-शक्ति पर निर्भर करें। यदि हम इसका उपयोग नहीं करते, तो हम इतनी बड़ी मानव-शक्ति की अवहेलना का गुरुतर अपराध करने के भागी होंगे। यह रास्ता हमें कभी खुशहाली की तरफ नहीं ले जा सकता।

किसी राष्ट्र की समृद्धि केवल उसके भौतिक उत्पादन पर ही निर्भर नहीं है। यह उत्पादन तभी तक ठीक है, जब तक वहाँ के लोगों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए वह होता है। इसलिए सबसे पहले हमें लोगों को उनकी आवश्यकता की चीजें तैयार करने के लिए संगठित करना चाहिए। खाने के लिए अच्छा भोजन, पहनने को पूरे कपड़े, रहने को ठीक मकान पहले नम्बर की जरूरियातें हैं, और उसके बाद उनके शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति के लिए औषधोपचार, शिक्षा और सामाजिक सुविधाओं को

पूरा करने का प्रश्न आता है। जब तक हम अपनी प्राथमिक जरूरतें पूरी नहीं कर लेते, निर्यात के लिए उत्पादन की बात सोचना ही बेवकूफी है। सिर्फ रुपये से किसीको संतोष नहीं होता, सिवा उस कंजूस के, जिसके लिए उसकी खनखन ही स्वर्ग समान है। रुपया कमाना, यही एक ध्येय तो है नहीं। यदि हमारी व्यवस्था ऐसी है कि लोगों के पास रुपया तो काफी आ जाता है, पर उनकी आवश्यकता की वस्तुएँ मिलती ही नहीं या उन्हें भूखा मरना पड़ता हो, तो ऐसा रुपया आखिर किस काम का? हमारा पहला कर्तव्य तो लोगों के लिए भरपेट भोजन, रहने को मकान और पहनने को कपड़ा देना है। और बातें बाद की हैं। कोई भी सरकार, जो सरकार कहलाने का दम भरती है, उसका पहला फर्ज यह है कि वह अपनी आर्थिक नीति इस प्रकार चलाये कि लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति में वह सहायक हो सके।

लोगों की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के अलावा हमारा ध्येय उनमें स्वावलंबन, सहयोग और सामाजिक एकता की भावना उत्पन्न करना है। यदि हम इतना कर लेंगे, तो स्वराज्य के राह की एक बड़ी मंजिल स्वावलंबन से पार कर चुकेंगे।

संतुलित आहार के आवश्यक द्रव्यों को सामने रखकर कृषि-उत्पादन क्षेत्रों को इस प्रकार बाँटना चाहिए, जिससे खाद्य-पदार्थों के लिए प्रत्येक प्रांत स्वावलंबी हो सके। केवल उन्हीं प्रांतों से अतिरिक्त उपज बाहर भेजने की व्यवस्था की जानी चाहिए, जहाँ स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति के बाद उपज अधिक बच जाय, अन्यथा नहीं। अगर मार्केटिंग महकमा प्रान्त से ऐसे माल को—जो वहाँ की जरूरत ही पूरी नहीं कर पाता—बाहर भेजने में मदद देता है, तो ऐसा महकमा प्रांत के साथ साफ दगा कर रहा है। इसलिए ऐसे कदम उठाये जाने चाहिए कि प्रांतवासियों को काम मिल सके और इसके लिए जो कुछ साहित्य की जरूरत पड़े, उसकी व्यवस्था की जाय।

◆◆◆

सरकार के कर्तव्य : १ :

अन्नोत्पादन, अन्न-संग्रह, बाजार-व्यवस्था आदि

जनता का सारा जोश, बुद्धिमत्ता और साधन, जो अब तक कारखानों मे बनी चीजों की उन्नति करने में व्यय हुआ है, अब ग्रामोद्योगों के आधार पर ग्राम-स्वावलंबन की ओर लगाया जाना चाहिए। ग्रामोद्योगों के सामने आनेवाली सारी रुकावटों को पूरी तरह दूर करके उन्हें अवश्य ही मिलों की सस्ते माल की होड़ से बचाने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए। इस कार्यक्रम का मतलब हो सकता है कि हमे मिल की बनी सब रोजमर्रा के इस्तेमाल में आनेवाली और प्राथमिक आवश्यकता की चीजों पर भारी टैक्स लगा देना पड़े। इसके लिए हमें निम्न दिशाओं में कार्य करना चाहिए।

ध्येय

यह गाँवों की उन्नति के लिए एक सर्वसामान्य, मोटे तौर पर बनायी हुई योजना है। इसमें हरएक केंद्र के लिए विस्तृत योजनाएँ नहीं दी गयी हैं। इसमे सिर्फ कार्य की उचित दिशा का दिग्दर्शन किया गया है। इस दिशा को ध्यान मे रखकर हरएक केंद्र को समय-समय पर अपनी-अपनी निश्चित योजनाएँ बना लेनी चाहिए।

ऐसी कोई विस्तृत योजना बनाने के पहले हमने जो यह योजना का खाका खींच रखा है, उसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। क्योंकि किसी स्थान-विशेष के लिए बनायी गयी योजना

उस स्थान के फायदे की होने के साथ ही साथ बड़ी योजना में भी युक्तायुक्त होनी चाहिए। इसलिए सर्वसामान्य योजना बनाते समय कौनसे उद्देश्य सामने रखे गये थे, यह स्पष्ट कर देना जरूरी है।

इस योजना का उद्देश्य गाँवों को अधिक सुखी और समृद्ध बनाना है, ताकि किसी भी ग्रामवासी को एक व्यक्ति के नाते तथा समाज के एक घटक के नाते अच्छी तरह से विकसित होने की गुंजाइश रहे। ऐसा करने के लिए सहकारिता के तत्त्व पर आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए स्थानिक बुद्धि और स्थानिक साधनों का यथासंभव अधिक उपयोग कर लेना जरूरी है। अर्थात् ग्रामों के पुनर्निर्माण का अर्थ है, ग्रामों में स्वावलंबी, स्वयंपूर्ण और अच्छी तरह से संगठित समाज-जीवन निर्माण करना। ऐसे काम से अंततोगत्वा न्याय और प्रजातंत्रयुक्त प्रादेशिक लोकराज्य कायम होंगे और उनको जोड़नेवाली एक शक्तिशाली केंद्रीय सरकार निर्माण होगी। इन प्रदेशों के क्षेत्र छोटे-बड़े हो सकते हैं। कभी उसमें एक लाख की भी आबादी हो सकती है, कभी कम और कभी ज्यादा। क्षेत्र की मर्यादा निश्चित करने के लिए उसकी साधनसंपन्नता का विचार करना पड़ेगा और साथ ही साथ वह बहुत बड़ा भी न हो, इसका खयाल रखना होगा। इन प्रजातान्त्रिक इकाइयों में वर्ण तथा वर्ग-विहीन समाज की रचना होगी।

काम की योजना

नीचे लिखे पाँच प्रमुख कार्यों के इर्द-गिर्द ग्राम-सुधार का काम शुरू करना होगा :

१. खेती और ग्रामोद्योग
२. सफाई, स्वास्थ्य और मकान
३. ग्रामीण शिक्षण

४. ग्राम-संगठन
५ ग्राम-संस्कृति

खेती और ग्रामोद्योग

इस मद में हम ग्रामीण अर्थशास्त्र की चर्चा करेंगे। वैसे तो यह काफी बड़ा विषय है, पर संक्षेप में ग्रामीण अर्थशास्त्र की बुनियाद खेती है, जिसमे पशु-पालन का भी शुमार है।

१. कृषि

खेती के पैदावार की व्यवस्था दो बातों को ध्यान मे रखकर की जानी चाहिए :

(१) स्थानीय जरूरत के मुताबिक भोजन की चीजें तथा अन्य प्राथमिक आवश्यकताओं के लिए कच्चे माल की उपज उसी प्रदेश में होनी चाहिए।

(२) वहाँ की उपज ऐसी बनाने की कोशिश करनी चाहिए, जिससे ग्रामोद्योग के काम में आनेवाली सामग्री मिल सके। फैक्टरी के लिए पैदावार करना दूसरे नम्बर पर आना चाहिए। जैसे, मोटे छिलके के गन्ने—जिसकी फैक्टरी को जरूरत होती है—के बजाय पतले छिलके का गन्ना, जिससे गाँव मे चर्खी से पेरकर गुड़ बनाया जा सकता है, उगाना ज्यादा लाभदायक है। उसी प्रकार लम्बे रेशेवाली रूई फैक्टरी के लिए भले ही अच्छी हो, हाथ से कातने को तो छोटे रेशे की रूई का ही उपयोग होता है, इसलिए इसे ही प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। जो अतिरिक्त जमीन हो, उसमे ऐसी पैदावारें, जिनकी आसपास के प्रदेशों मे जरूरत हो, की जा सकती हैं। फैक्टरियों के लिए की जानेवाली गन्ना, तम्बाकू, जूट आदि की पैदावार तो कम-से-कम या बिल्कुल ही खतम कर देना चाहिए। किसान इसी नीति का अमल करे। इसके

लिए सरकार को हर जमीन के लिए विशेष वस्तु की खेती अनिवार्य रूप से लागू कर देनी चाहिए और जो फैक्टरी के लिए पैसेवाली पैदावार करना चाहें, उन पर कड़ा महसूल और ऊँची दर पर लगान वसूल करके किसानों को ऐसी पैदावारों की ओर से धीरे-धीरे उदासीन कर देना चाहिए। सारांश यह है कि वांछित नियमों द्वारा कृषि-उत्पादित पदार्थों के मूल्य जैसे भी हो, उद्योग से उत्पादित वस्तुओं के मूल्य के आसपास बनाये रखना चाहिए।

तम्बाकू, जूट, गन्ने आदि की व्यापारिक फसलें दुगुनी नुकसानदेह हैं। उनसे मनुष्य और मवेशी, दोनों के खाने में कमी होती है। अनाज की खेती से आदमियों को भोजन मिलता है और जानवरों को चारा।

अन्न और दूध ऐसी प्राथमिक आवश्यकता की चीजों से स्टार्च और केसीन बनाकर व्यापारिक वस्तुएँ बनाने की प्रथा को तो जड़ से ही खतम कर देना होगा। फैक्टरी के लिए उपयुक्त गन्ने की खेती कम होने से गुड़ की उत्पत्ति में कमी होगी। आज जिन ताड़ के पेड़ों से मादक ताड़ी निकाली जाती है, उनके रस से—नीरा से—गुड़ बनाकर यह कमी बखूबी पूरी की जा सकती है। ये पेड़ बहुत-से तो बेकार खड़े हैं और बेकार बंजर जमीन में भी उगाये जा सकते हैं। इनसे हमारी चीनी या गुड़ की माँग भलीभाँति पूरी हो जायगी। इस तरह हमारी जो अच्छी जमीन गन्ने की खेती से बचेगी, वह अनाज, फल, सब्जी उगाकर देश की भोजन की कमी की समस्या हल करने में सहायक होगी।

२. सिंचाई

गाँवों में सिंचाई की कितनी कमी है, यह कहने की जरूरत नहीं। यही नींव है, जिस पर खेती-बारी की उन्नति अवलंबित है। यदि यह न हो, तो खेती एक अनिश्चित जुआ-सा हो जाती है।

दाँव लगाया—हार या जीत—पानी के हाथ। कुएँ खोदने, तालाब बनाने और बढ़ाने और नहर खोदने का एक उपक्रम जारी करने की जरूरत है। चावल पॉलिश करने की मिलों और यान्त्रिक चक्कियों में इस्तेमाल होनेवाले इंजनों को सरकार को ले लेना चाहिए और उन्हें कुओं से पानी खींचने के काम में लाना चाहिए। बिना अच्छी सिंचाई के खाद भी नहीं दी जा सकती, क्योंकि पानी के बिना खाद नुकसानदेह है।

३. खाद

गाँव की बहुत-सी गंदगी जैसे—कूड़ा, हड्डियाँ, मल-मूत्र आदि, जिनसे गाँव का स्वास्थ्य आज खतरे में है—खाद बनाने के काम में लाई जा सकती है। यह आसानी से किया जा सकता है और इनसे बनी खाद मवेशियों के गोबर इतनी ही अच्छी होती है। हड्डियाँ और खली, जो अक्सर विदेशों को निर्यात कर दी जाती हैं, गाँव से बाहर जाने ही न देना चाहिए। हड्डियों को थोड़ी भुनकर चूने की चक्की में पीस डालना चाहिए और यह बारीक खाद किसानों मे बाँट देनी चाहिए। गाँव में ऐसी खाद ठेके पर भी बनवायी जा सकती है। इससे गाँव की सफाई भी हो जायगी और सफाई करनेवाले हरिजनों का ओहदा खाद-उत्पादन मे लगे व्यापारियों का हो जायगा।

तेल की मिलें, जो गाँवों से तिलहन ले जाकर उन्हें सिर्फ तेल ही वापस देती हैं, गाँवों की एक बहुमूल्य खाद को दूसरे देशों मे भेजने का अपराध करती हैं। इसे जल्द-से-जल्द बन्द करना होगा। यही खास वजह है कि तिलहन गाँव के बाहर जाने ही न देना चाहिए और उन्हें स्थानीय तेलघानियों मे ही पेरना चाहिए। इससे तेल और खली गाँव मे रह जायगी, जिससे आदमी, चौपाये और जमीन—तीनों को फायदा पहुँचेगा।

जमीन की पैदावार बढ़ाने के बहाने रासायनिक खादें प्रचलित करने की बड़ी कोशिश हो रही है। इसके प्रयोग का सारे संसार का अनुभव इसके विरुद्ध हमें चेतावनी देता है। इनकी वजह से जमीन की उर्वरा-शक्ति नहीं बढ़ती, बल्कि जो पहला सत्त्व होता है, वह पहली फसल में ही जोरों के साथ ऊपर आ जाता है और जमीन बाद को सब सत्त्व निकल जाने पर जल्द ही निस्सत्त्व हो जाती है। साथ ही साथ उससे जमीन के केचुए इत्यादि जैसे कीड़े, जिनसे खेती को भी फायदा होता है, मर जाते हैं। लम्बी मियाद के दृष्टिकोण से तो ऐसी खादें खेती के लिए एकदम हानिकारक हैं। ऐसी खादों के प्रचार की ओट में रासायनिक खादों की फैक्टरीवालों का स्वार्थ छिपा हुआ है, फिर उनसे खेती का कितना ही नुकसान क्यों न हो?

४. जमीन की देखभाल

खाद की किस्म और मात्रा में वृद्धि करने के अलावा अन्य तरीकों से जमीन का उपजाऊपन बनाये रखना भी जरूरी है। इसके लिए कटाव रोकने के लिए नाली, बाँध और रोकथाम, आदि से बहाव राह से लगाया जाना चाहिए। अन्ततोगत्वा जमीन का उपजाऊपन ही असली जड़ है, जिस पर क्या आदमी और क्या जानवर, सभीका पोषण टिका हुआ है। यदि जमीन कम उपजाऊ है, तो उससे उत्पादित अन्न भी कम पोषक तत्त्व का होगा और वहाँ के आदमियों और मवेशियों का स्वास्थ्य भी गिरा हुआ होगा। यही वजह है, जिससे पोषक-शास्त्रज्ञ स्वास्थ्य और कृषि का घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ते हैं।

५. बीज

चुने हुए बढ़िया किस्म के बीज अच्छी पैदावार के लिए जरूरी हैं। जरूरत इस बात की है कि ऐसे बीज के वितरण के लिए कोई

अच्छी व्यवस्था हो। इसके लिए सहकारी समितियों से बढ़कर कोई कारगर साधन नहीं हो सकता। वे समितियाँ बीज पैदा करने के लिए सुयोग्य शोधकों के निरीक्षण में खास खेतों में खेती करें।

६. शोध-कार्य

खेती की सारी खोजे इस दृष्टिकोण से की जानी चाहिए, जिनसे अन्न और ग्रामोद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे माल के उत्पादन से तरक्की हो। तंबाकू जैसी व्यापारिक फसलें, फैक्टरियों के लिए मोटे छिलके के गन्ने और लंबे रेशे की कपास आदि शोध-कार्य न किया जाय।

७: स्वावलंबन के लिए संतुलित खेती

अन्न की समस्या ने इस समय विकराल रूप धारण कर लिया है, इसलिए एकाएक उसका उकेल मिलना सम्भव नहीं। उसके दो हिस्से हैं: एक है, कॅलरियों की कमी और दूसरा है, संरक्षक खाद्यों की कमी। पहले को दूर करने के लिए मार्ग निकल सकता है, पर दूसरे का हल कुछ पेचीदा-सा मालूम होता है।

आमतौर से समझा जाता है कि एक एकड़ जमीन से अनाज द्वारा ही सबसे अधिक कॅलरी का भोजन प्राप्त किया जा सकता है। यदि कॅलरियों का सवाल छोड़ भी दें, तो भी संरक्षणतत्त्व अनाज में बहुत कम होते हैं। इसलिए यदि ये तत्त्व भी अनाज से ही पूर्ण किये जाने हों, तो हमे बहुत अधिक मात्रा मे अनाज की जरूरत पड़ेगी। परंतु यदि फल, दूध और दूध की घनी वस्तुएँ, कड़े छिलके के फल, गुड़, तिलहन इत्यादि भी आहार में शामिल कर लिये जायँ, तो संतुलित आहार के लिए इनकी कम मात्रा मे ही संरक्षणतत्त्व मिल सकते हैं। एक एकड़ जमीन से जितनी कॅलरी

का आहार पैदा हो सकता है, उससे कहीं अधिक कॅलरियाँ गुड़ और आलू की जाति की सब्जियों के द्वारा मिल सकती हैं। इस प्रकार संतुलित आहार हमारे लिए एक दोहरा आशीर्वाद होगा और हमारी समस्या को भी हल कर सकेगा। इसके द्वारा प्रति मनुष्य जमीन की आवश्यकता भी कम हो जायगी और साथ ही साथ शरीर की सब आवश्यकताओं की ठीक अनुपात में पूर्ति करके शरीर स्वस्थ तथा चुस्त बनेगा। ऑकड़ों के अनुसार भारत में प्रति मनुष्य को केवल ७ एकड़ जमीन अन्नोत्पत्ति के लिए प्राप्य है। इतनी थोड़ी-सी जमीन मौजूदा हालत में हमारे लिए समुचित आहार उत्पन्न करने में असमर्थ है। पर बतायी गयी योजनानुसार वह आवश्यकता की पूर्ति करने में समर्थ होगी। स्थानीय जमीन को इस हिसाब से बॉटना चाहिए, जिससे वहाँ की आबादी को संतुलित भोजन, कपड़ा और अन्य जरूरत की सारी आवश्यकताएँ वहाँ की पैदावार से मिल सकें। प्रश्न के इस पहलू पर गौर किया जाना चाहिए और योजना बनाकर उसे कार्यान्वित करने के लिए किसानों को कानूनन विशेष जमीन में विशेष खेती करने के लिए बाध्य करना चाहिए। एक लाख आबादी के लिए संतुलित खेती की योजना की तालिका आगे के पृष्ठ में दी गयी है।

तालिकानुसार २,८६० कॅलरी प्रतिदिन का निरामिष संतुलित आहार हर आदमी को मिलेगा और साथ ही प्रति मनुष्य प्रतिवर्ष २५ वर्गगज कपड़े के हिसाब की रूई भी पैदा होगी। आमिष भोजन के लिए ६ औंस दूध के स्थान पर ४ औंस मांस या मछली और एक अण्डा दिया जा सकता है।

	औंस प्रति दिन	कॅलरी	पौण्ड प्रति वर्ष	आवश्यक जमीन (एकड़ों में)	बीज के लिए तथा १५% व्यर्थ आदि	कुल	प्रतिशत में जमीन का बँटवारा
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)
१. खुराक							
अनाज ..	१६	१,६००	३६५·००	४३,४००	६,५१०	४९,९१०	६५·२
दाल	२	२००	४५·६०	५,४००	८१०	६,२१०	८·०
गुड़	२	२००	४५·६०	१,२००	१८०	१,३८०	१.८
कडे छिलके के फल	१	१४५	२२·८०	२,६००	३९०	२,९९०	८·४
तेल	½		११ ४०	३,०००	४५०	३,४५०	
घी	½	२५५	११ ४०			.	
दूध	१२	२४०	२७३ ७५				...
सब्जी	८	४८	१८२·५०	१,६००	२४०	१,८४०	२४
आलू तथा कद	४	१००	९१·२५	१,०००	१५०	१,१५०	१·५
फल	४	५२	९१·२५	९००	१३५	१,०३५	१ ५
२. कपास...		...	१२ ५०	७,५००	१,१२५	८,६२५	११ ३
कुल ..		२,८६०	.	६६,६००	९,९९०	७६,५९०	१००·०

(अ) साग-तरकारी लगाना—गाँववालों की खुराक में अनाज की मात्रा बहुत अधिक रहती है और साग-भाजी की बहुत कम। उनकी नाताकती का यही एक मुख्य कारण है। अपनी आवश्यकता की साग-भाजी शायद ही ऐसा कोई देहात हो, जो न पैदा कर सके। इसलिए उचित तौर पर साग-भाजी की खेती संगठित करनी चाहिए और जरूरत पड़ने पर लाजिमी भी कर

देनी चाहिए। जिन कुटुंबों के पास अपनी जरूरत की भी सब्जी लगाने के लिए जमीन न हो, उन्हें या तो मुफ्त में या सस्ते दामों में थोड़ी-सी जमीन दिला देनी चाहिए। सब्जी की प्रदर्शनियाँ करनी चाहिए और जिनकी सब्जियाँ सबसे अच्छी हों, उन्हें इनाम दिये जाने चाहिए।

(ब) फलों के पेड़ लगाना—अपने-अपने क्षेत्र में आसानी से लग सकनेवाले फलों के पेड़ व्यक्तिगत तथा सामूहिक रीति से लगाने की योजनाएं होनी चाहिए।

(क) अन्य काम—इनके अलावा मुर्गी पालन, मधुमक्खी पालन, भेड़ें और सुअर पालना, मछलियों की खेती और रेशम के कीड़े पालना आदि काम भी उठाये जा सकते हैं।

८. पशु-पालन

चूँकि हमारा [समूचा ग्रामीण अर्थशास्त्र बैल या गाय की बुनियाद पर खड़ा है, इसलिए पशु-पालन का खेती से बहुत घनिष्ठ संबंध है। इसलिए खूब काम करनेवाले और दुधारू जानवर पैदा करने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। बकरियों को भी इसी दृष्टि से पालना चाहिए।

(अ) ग्रामीण गोशालाएँ—आज गाँवों के दूध का उत्पादन अस्त-व्यस्त हो गया है और उससे स्वयं गाँववालों का ही बहुत नुकसान होता है। शहर के लोगों को वह देहातों को लूटने का एक अच्छा जरिया मिल जाता है। इसलिए सहकारिता के आधार पर चलायी जानेवाली देहाती गोशालाओं की नितान्त आवश्यकता है।

(आ) पशुओं के रोग—पशुओं के मामूली रोग और उनके सस्ते तथा आसान इलाज गाँववालों को सिखाने चाहिए। वैसे तो

गाँवों में इस विषय का काफी ज्ञान रहता है। उसमें थोड़ी वृद्धि करने की और उसमें शास्त्रीयता लाने की जरूरत है।

(इ) मवेशियों के लिए चरागाह—पुराने जमाने में समूचे गाँव का चरागाह वहाँ की अर्थ-व्यवस्था का एक प्रधान अंग बना रहता था। पर ऐसे चरागाह आजकल तो नदारद हो गये हैं। यह बहुत घातक है और यदि जरूरत पड़े, तो सरकारी नियमों मे हेरफेर करके ही क्यों न सही, पर यह अवस्था बदल देनी चाहिए।

९. अन्न-संग्रह

अगर अन्न-संग्रह स्थानीय गोदामों में ही हो, तो कीड़ों से खराब होने, रखने पर व्यर्थ जाने और लाने-ले जाने में बर्बाद होने के नुकसान से बचाव हो सकता है। सिर्फ गलत तरीके से रखने से ही बड़ी भारी मात्रा में हानि होती रहती है। इस तरह होनेवाले नुकसान का अन्दाजा ३५ लाख टन सालाना आँका जाता है। अर्थात् इस वर्ष होनेवाली गल्ले की कमी के बराबर गल्ला तो इसी तरह व्यर्थ हो जाता है। इसके अलावा अनाज को गलत तरीके से संग्रह करने से कीड़े, चूहे, नमी आदि द्वारा जो नुकसान पहुँचता है, उससे अनाज की पोषकता पर जो प्रभाव पड़ता है, वह अलग रहा। इसलिए संग्रह करने की समस्या बड़ी जरूरी और स्थायी है। इसकी रोकथाम के लिए जोरदार प्रयत्न करना चाहिए। जो कुछ भी हो, अवैज्ञानिक रीति से बने गोदामों मे अनाज इकट्ठा करने की प्रथा को तो एकदम रोक ही देना चाहिए।

कस्बों और शहरों मे, जहाँ अधिक गल्ला इकट्ठा किया जाता है, पक्के सीमेंट के गोदाम बना लेने चाहिए। इस सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर के गोदाम अनुकरणीय हैं। ऐसे गोदाम या तो म्युनिसिपैलिटी बनवा सकती है या स्वतंत्र रूप से बनवाये जा सकते हैं। ये गोदाम किराये पर दिये जा सकते हैं।

इन गोदामों को लाइसेन्स दिया जाकर व्याइलरों की तरह उनका भी निरीक्षण किया जाना चाहिए।

अगर अनाज गाँव में ही संग्रह किया जाता है, तब तो उसके शहर में आने और फिर वापस गाँव में ले जाने का सारा परिश्रम वच जाता है और उसके खराब होने की कम सम्भावना रहती है। गाँव का गल्ला गाँव में ही संग्रह होने से बहुत से फायदे हो जायँगे। काले बाजार का कोई मतलब ही न रह जायगा। गल्ले के भाव की भारी घट-बढ़ भी ठीक हो जायगी और गाँववालों को शहर से 'राशन' लाने में जो तकलीफ होती है, उससे भी उन्हें छुटकारा मिल जायगा।

जो लोग अपना गल्ला खुद खत्तियों में रखते हों, उन्हें भी उसे ठीक तरीके से रखने का ज्ञान कराना चाहिए।

१०. गाँव का कच्चा माल गाँव में ही रहे

ग्रामोद्योगों के सामने जो सबसे बड़ी कमी आती है, वह यह है कि गाँव के दस्तकार के पास कोई कच्चा माल नहीं रहता। असंगठित होने के कारण वह अकेला मिलों से मुकाबला कर ही नहीं पाता। वह अपने जबरदस्त मुखालिफ—संगठित और साधन-सम्पन्न मिलों के सामने टिक ही नहीं पाता। ये साधन-सम्पन्न मिलें कच्चे माल को केवल अपने लिए हथियाकर, तैयार माल को भी सुदूर कोनों तक में पहुँचाकर, बेचारे कारीगर को कहीं का भी नहीं छोड़तीं। बैंकों की अर्थ-प्रणाली, अन्यायपूर्ण रेल के किराये और पूँजीपतियों की व्यापारिक संस्थाएँ, सभी बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के पक्ष में होकर बेचारे कारीगर को एक ओर छोड़ देती हैं। गाँवों के कारीगरों के लिए गाँवों में बड़ी कठिनाई से कच्चा माल बच पाता है। इस प्रणाली का ही अन्त हो जाना चाहिए। गाँव में पैदा हुआ सारा कच्चा माल वहीं खप जाना चाहिए और केवल अतिरिक्त

माल ही गॉव के वाहर जाना चाहिए। पैदावार में भी उन्हीं चीजों की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए, जिनकी ग्राम-उद्योगों में जरूरत पड़ती है, न कि उनकी, जो फैक्टरियों के काम में आती हैं।

११. किराये की दरें और यातायात में प्रथम स्थान

इस समय प्रायरिटी और किरायों की पक्षपाती दरें फैक्टरी के बने माल के लिए दी जाती है। ग्रामोद्योग की वनी चीजें जैसे हाथ का बना कागज, ग्रामोद्योग का सरंजाम, वनस्पतिजन्य तेल की लालटेनें आदि को तो कोई पूछता भी नहीं, इससे इन उद्योगों की हालत दिन-दिन खराब होती जाती है और उन्हें वड़ी परेशानी उठानी पड़ती है। रेलवे की इस नीति से ग्रामोद्योगों को, लड़ाई के जमाने मे जिनका विकास सम्भव था, कोई कम धक्का नहीं पहुँचा है। अन्य सब बातों के साथ ही साथ इस रेल के मामले मे भी दृष्टिकोण वदलना होगा और ग्रामोद्योगों की भलाई ध्यान में रखकर नीति वरतनी होगी। ग्रामोद्योगों की बनी वस्तुओं पर चुंगी और म्युनिसिपल टैक्स आदि भी नहीं लगने चाहिए।

१२. औजार और सरंजाम का प्रबन्ध

ग्रामोद्योगों में काम में आनेवाले औजार और सरंजाम देश के हर भाग में एक-से कार्यक्षम नहीं हैं—कहीं-कहीं तो प्रान्त के भागों में भी वे भिन्न-भिन्न हैं। उनके सुधार के लिए शोध की आवश्यकता हे। ग्राम के कारीगरों को सुधरे औजार और उनके हिस्से वरावर मिल सकें, इसके लिए एक संस्था की जरूरत है।

१३. जिलो के प्रदर्शन-केन्द्र

ये केन्द्र गॉवों मे होने चाहिए। इनका काम निम्नलिखित होगा :

(१) गाँव के दस्तकारों के लिए औजार बनाना, उन्हें देना और इन औजारों में सुधार करना।

(२) बढ़ई और दस्तकारों को संशोधित नवीनतम प्रणाली की शिक्षा देना।

(३) स्थानीय दस्तकारियों और उनके काम में आनेवाले सरंजाम का छोटा-सा संग्रहालय बनाना।

(४) प्रत्येक जिले के उद्योगों की और वहाँ के लोगों के स्वास्थ्य की जाँच करके उसका ब्योरा बनाना; और

(५) स्थानीय सहकारी समितियों और हिन्दुस्तानी तालीमी स्कूलों से मिल-जुलकर ग्राम-सुधार में मदद करना।

१४. प्रान्तीय शिक्षण-केन्द्र

प्रान्त में (अच्छा हो कि भाषा के हिसाब से) एक शिक्षण-केन्द्र होना चाहिए, जो निम्न कार्य करे :

(१) जिलों के प्रदर्शन-केन्द्रों के सहयोग से ऐसे ग्रामोद्योगों की कला और पद्धति में शोध करे, जो कि उस प्रान्त में हो सकते हों,

(२) स्थानीय भाषाओं में उनके बारे में पूरी जानकारी प्रकाशित करे;

(३) ग्रामोद्योग प्रदर्शनियों का आयोजन करे;

(४) एक सरंजाम-कार्यालय रखे, जहाँ ऐसे सरंजाम, जो गाँवों में नहीं बन सकते, जैसे—बैलों से चलनेवाली आटा चक्की, चावल से धान अलग करने की मशीन, चीनी बनाने का सेन्ट्रीफ्यूज, कागज के लिए बीटर, डाइजेस्टर, कैलेण्डर, स्क्रू प्रेस, फिल्टर-प्रेस आदि बनाये जायँ; और

(५) ग्राम-सेवकों को शिक्षा दे, जो जिले के प्रदर्शन-केन्द्रों और सहकारी समितियों में काम कर सकें (ये लोग सरकार की ओर से रखे जा सकते हैं)। परन्तु ऐसे ग्राम-सेवक भी हो सकते हैं, जो अपने-आप कोई उद्योग-धंधा करके कमाना चाहेंगे, उनके लिए योजना बन सकती है। उदाहरणार्थ उनको बिना सूद के रुपया उधार दिया जा सकता है, जिससे वे बैल आदि अन्य सरंजाम खरीदने लायक पूँजी पा सकें और एक विशेष अवधि के बाद लौटाने की शर्त पर—मसलन तीन साल के बाद—कुछ पूँजी उन्हें दी जा सकती है। पूँजी मासिक किस्तों द्वारा वापस ली जा सकती है। ऐसी दशा में वे अपना धंधा खड़ा कर सकेंगे। उनको कच्चा माल खरीदने और बना माल बेचने मे सहकारी समितियाँ मदद देंगी।

१५. सहकारी समितियाँ

सहकारी समितियाँ सिर्फ ग्रामोद्योगों के पनपाने के लिए ही नहीं, वरन् गाँवों मे आपसी सहयोग की भावना उत्पन्न करने मे भी सहायक होंगी। एक बहुधंधी सहकारी समिति बहुत तरह से गाँववालों को मदद पहुँचा सकती है। जैसे :

(१) ग्रामोद्योगों के लिए कच्चा माल तथा लोगों के लिए आवश्यक खाने का अनाज इकट्ठा करके रखना,

(२) गाँव की बनी अतिरिक्त वस्तुओं की बिक्री का प्रबन्ध करना और स्थानीय आवश्यकता की वस्तुओं का वितरण,

(३) बीज, औजार और अच्छी खादें आदि बाँटना। जैसे हड्डी की खाद, खली की खाद, सोनखाद आदि,

(४) एक अच्छा साँड पालना, और

(५) टैक्स और लगान वसूल करने और जमा करने के मामले मे सरकार और जनता के बीच का जरिया बनना।

अनाज लाने, ले जाने, संग्रह करने, बाँटने और एक स्थान से दूसरे स्थान लाने-ले जाने में जो बहुत-सा खर्च होता है, वह सहकारी समितियों द्वारा रुक जायगा। ये समितियाँ जनता और सरकार दोनों की विश्वासपात्र होंगी। अगर गाँव में ही अन्न-संग्रह किया जायगा, तो मुलाजिमों की तनख्वाह का कुछ हिस्सा अनाज के रूप में दिया जा सकेगा। इससे अनाज में ही लगान वसूल करने की पद्धति में बड़ी सहायता मिलेगी।

♦ ▪ ♦

ग्राम-उद्योग : २ :

१. धान पिसाई

(१) त्रावणकोर की तरह सब जगह चावल की मिलें बन्द करा दी जायँ और जैसे पहले सुझाया जा चुका है, उनके इंजनों से सिंचाई का काम लिया जाय।

(२) चावल पॉलिश करने के हलर्स पर पाबन्दी लगा दी जाय।

(३) जनता को बिनाकुटे चावल की पोषकता के बारे में शिक्षा दी जाय और उसके पकाने का ठीक ढंग प्रत्यक्ष दिखाया जाय। चावल को पॉलिश करने की मनाही की जाय, या उसके पॉलिश करने की अधिकतम मात्रा मुकर्रर कर दी जाय या उसना चावल इस्तेमाल करने पर जोर दिया जाय।

(४) जहाँ धान कूटने का धंधा अब भी चल रहा है या बड़े पैमाने पर व्यापारिक ढंग से काम होता है, वहाँ गाँव के उद्योग-पतियों को धान से चावल अलग करनेवाली मशीनें, छिल्के उड़ाने के पंखे जैसे कीमती औजार सामूहिक तौर पर सहकारी समितियों की मार्फत किराये पर दिये जायँ।

(५) बिनाकुटे चावल के प्रयोग से उसकी खपत बढ़ने पर धान की यातायात बढ़ जायगी, उस हालत में इसके एक जगह से दूसरी जगह जाने में जो छिलके का फालतू किराया पड़ेगा, उससे चावल की कीमत पर असर न पड़े, इसलिए धान के लिए किराये के सहूलियत के दर निश्चित किये जाने चाहिए।

(६) ऐसी जगहों में जहाँ धान कूटने और पालिश करने की क्रिया एक साथ होती है, अर्थात् उसी सरंजाम से दोनों क्रिया साथ-साथ सम्पादित होती है, उसमें चावल छड़ा हुआ तैयार होता है, ऐसी जगहों में छिलका अलग करनेवाली मिट्टी, लकड़ी या पत्थर की हल्की चक्कियों का प्रयोग प्रसारित किया जाय, जिससे पॉलिश रुक जायगी। ऐसे साधन अन्य ग्रामोद्योगों के औजारों के साथ जिले के प्रदर्शन-केन्द्र द्वारा बाँटे जा सकते हैं। चावल पॉलिश करने के साधनों को कम करने के लिए उन पर टैक्स लगा देना चाहिए और इनसे पॉलिश होनेवाले चावल की भी जाँच करके उसकी पॉलिश 'अधिकतम मात्रा के अन्दर' रखी जानी चाहिए। केवल अतिरिक्त मद ही बाहर भेजा जाना चाहिए। इन सब कार्यों के लिए बहुधंधी सहकारी समितियाँ ही उत्तम होंगी।

२. आटा पिसाई

(१) अच्छी किस्म का चक्की का पत्थर और बैल-चक्की तथा पनचक्की बनाने के साधन प्रदर्शन-केन्द्रों द्वारा वितरित किये जायँ।

(२) बढ़िया सफेद आटा या मैदे का बनना और इस्तेमाल एकदम बन्द कर देना चाहिए।

(३) बड़ी-बड़ी आटे की मिलें तो भारी मात्रा में आटा पीसती और इकट्ठा करती है, जिससे उसके सड़ने का डर रहता है। इसलिए उन्हें उत्तेजन नहीं देना चाहिए।

(४) जहाँ कहीं भी संभव हो, बैल-चक्कियों का प्रचार करना चाहिए।

(५) जहाँ नदी या नहरों से जल-शक्ति मिल सकती हो, उसका प्रयोग पनचक्की लगाकर करना चाहिए। ऐसी चक्कियाँ भी सहकारी समितियों की मार्फत चल सकती हैं, जैसा कि पंजाब में होता है।

३. तेल पेराई

देहाती घानी को पुनरुज्जीवित करने में निम्न कठिनाइयाँ हैं:

(१) निरन्तर तिलहन नहीं मिल सकता—गाँव से सब तिलहन पैदा होते ही बाहर चला जाता है। यह अवस्था बदलनी पड़ेगी। केवल अतिरिक्त तिलहन ही गाँव के बाहर जाने दिया जाय। तिलहन के दामों में इस किस्म का फर्क रखना चाहिए, जिससे मिल-वालों को वह गाँव से शहर तक लाने के गाड़ी खर्च जितना महँगा पड़े, अर्थात् गाँव और शहर में तिलहन के दाम में उसके गाडी-भाड़े के खर्च के बराबर अन्तर हो।

(२) स्थानीय घानी में कार्यक्षमता का अभाव और शिक्षित तेलियों का अभाव—कुछ जगहों में स्थानीय घानी इतनी छोटी और गलत तरीके की है कि उससे काम चलाना असम्भव है। एक ही प्रांत मे विभिन्न ढंगों की घानियाँ चलती हैं। इन सब तरह की घानियों की कार्यक्षमता की जाँच करके सुधरी घानी की उत्तमता समझायी जाय। पुरानी तरह की घानी बनानेवाले बढ़इयों की भी भारी कमी है। तेलियों को वक्त पर काम पड़ने पर ढूँढ़ना पडता है। उन्हें साधनों और काम में आनेवाले खुले भाग मिलने में भी बड़ी कठिनाई होती है। ऐसे केन्द्र खोले जायँ, जहाँ तेलियों तथा बढ़इयों को सुधरी घानी चलाने तथा बनाने की शिक्षा दी जाय और वहीं से उन्हें साधन और खुले भाग मिल सकें। ये केन्द्र तहसील में रहनेवाले तेल निकालनेवालों की समितियाँ बनाने में और उनके कार्य की देख-रेख मे भी मदद दे सकते हैं। ये तेल निकालनेवालों की सहकारी समितियाँ या बहुधंधी ग्राम-समितियाँ तिलहन जमा रखने, तेल, तिलहन और खली के बाजार भाव पर नियन्त्रण रखने और मिलावट रोकने मे सहायक होंगी।

(३) 'वनस्पति घी' पर भारी टैक्स लगाया जाय और उसे

कानूनन रंगदार बनवाकर असली घी से पहचानने योग्य बनाया जाय—वनस्पति घी घानी के ताजे तेल से हर तरह से नीचे दर्जे का होने के कारण उसको बिल्कुल प्रोत्साहन न दिया जाय। असल में इसका भ्रमोत्पादक नाम बदल देना चाहिए। इस वस्तु का प्रयोग कम-से-कम करना चाहिए।

(४) यान्त्रिक शक्ति से चलनेवाली बड़े पैमाने की तेल की मिलें किसी तरह गाँवों के स्वावलम्बन में सहायक नहीं होनेवाली हैं। ये तेल को सस्ता पैदा करने का दावा करती हैं, परन्तु असल में उनके सस्ते होने की असली वजह यह है कि उन्होंने तिलहन-बाजार पर अपनी बड़ी पूँजी की वजह से पूरा कब्जा जमा रखा है। उनके कारण ही गाँव के मवेशी और जमीन आवश्यक पोषक तत्त्व से वंचित रह जाते हैं। मतलब खली से है, जो विदेशों में निर्यात कर दी जाती है। तेल की मिलें ग्रामहितों के खिलाफ हैं और इसलिए इन्हें ग्राम-सुधार के मार्ग में एक रोड़ा मानना चाहिए। तेल-मिलों पर भारी लाइसेन्स-फीस लगायी जानी चाहिए और मिल का जो तेल गाँवों में लाया जाय, उस पर पंचायत महसूल लगाकर उसकी कीमत गाँव की घानी के तेल जितनी रखी जाय। जो तेल सड़ा हुआ पाया जाय, उसकी बिक्री कतई बंद कर दी जाय।

४. ताड़-गुड़ बनाना

यह उद्योग शराबबन्दी का विधायक रूप है, इसलिए जहाँ कहीं शराबबन्दी हो, वहाँ इसका प्रचार अवश्य करना चाहिए, क्योंकि वहाँ के ताड़ी बनानेवालों को तो बेकारी से बचाने का यही एक अच्छा तरीका रहेगा। ताड़-गुड़ बनाने का उद्योग बंगाल और मद्रास में व्यापारिक मान पर अभी भी हो रहा है। वहाँ यह धन्धा पूरी तरह चल गया है। जब दूसरे सूबे या प्रदेशों में इसे आरम्भ करना हो, तो वहाँ की सरकार को जनता को शुरू में थोड़ी आर्थिक मदद देकर और गुड़ खरीदकर सहायता देनी होगी।

(अ) आबकारी का महसूल ताड़-गुड़ बनाने के लिए इस्तेमाल होनेवाले पेड़ों पर न लगाया जाय—दोनों जगह—जहाँ शराबबन्दी हो और जहाँ न हो—ताड़ जाति के सब चीनी देनेवाले वृक्षों (नारियल, खजूर, ताड़ आदि) का छेदना बिना लाइसेन्स, टैक्स और इजाजत के नाजायज करार दिया जाना चाहिए। छेदना सिर्फ इसी शर्त पर हो कि उसका प्रयोग ताजा नीरा पीने और गुड़ बनाने के ही काम में लाया जाय। यह उद्योग पनप ही नहीं सकता, यदि कच्चा माल मिलने की पूर्ण सुविधा सबको प्राप्त न हो। इसलिए प्रान्त की सरकार को सभी प्रकार की सुविधाएँ देनी चाहिए। इसी तरह ताड़-गुड़ का उत्पादन, संग्रह और बिक्री के लिए गन्ने के गुड़ की तरह सुविधाएँ होनी चाहिए। हर पेड़ पर सरकार की तरफ से नाममात्र को महसूल लगाया जा सकता है।

सरकारी जंगलों से जलाने के लिए ईंधन आदि की सुविधा दी जानी चाहिए।

(आ) वर्गीकरण—जैसे कि बम्बई प्रान्त में इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट ऑफ एग्रिकल्चरल रिसर्च ने कृषि-उत्पादित वस्तुओं का वर्गीकरण करने की सुविधा गाँवों में दी है, उसी प्रकार ताड़-गुड़ और उसकी चीनी के साथ भी होना चाहिए।

(इ) पेड लगाना और उनकी देखभाल—ताड के पेड़ों को गिरा लेने की सख्त मुमानियत होनी चाहिए। सरकारी बेकार जमीन, जो खेती के काम में नहीं लायी जा सकती, ताड़ के पेड़ लगाने के काम में लानी चाहिए, जिससे समय पाकर गन्ने के गुड़ की जगह ताड का गुड़ काफी मिल सके। इसके अलावा स्वतन्त्र रूप से जो लोग इसे मुंडेरों और अपने खेतों में लगाना चाहें, उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। इसके लिए अच्छी किस्म के बीज बाँटे जायँ और लोगों को उनके लगाने का सही तरीका सिखाया जाय।

(ई) सहकारी समितियाँ—माल खरीदकर बेचने का काम सहकारी समितियों को सिपुर्द किया जा सकता है। आवश्यकतानुसार ये समितियाँ कढ़ाये और सेंट्रीफ्युगल मशीन आदि साधन किराये पर देने का जिम्मा ले सकती हैं।

५. मधुमक्खी पालन

मधुमक्खी पालन से दोहरा लाभ है। इसकी वजह से फसल अच्छी होती है और किसानों को मधु के रूप में एक पोषक खाद्य-वस्तु मिलती है।

जिले का प्रदर्शन-केन्द्र अपने पास मधुमक्खी के छत्ते रखे और जिस जगह भी उनके लायक खुराक आसपास मिल सके, उन गाँवों में उनका विस्तार करे। इसके लिए उन स्थानों की पहले से मधुमक्खी विशारद द्वारा जाँच हो जानी आवश्यक होगी। एक बार मधुमक्खी पल जाती है, तो केन्द्र किसानों की शिक्षा का प्रबन्ध कर सकता है और उन्हें सस्ते दामों पर साधन दे सकता है।

६. कपास और ऊन

ऐसे प्रान्तों मे जहाँ कपास पैदा हो सकती है, १२½ पौण्ड रुई प्रति मनुष्य के हिसाब से उगाने लायक काफी जमीन इसके लिए मुकर्रर कर देनी चाहिए। अखिल भारत चर्खा-संघ के अनुसार कताई-बुनाई का इन्तजाम किया जाना चाहिए। इसी तरह जहाँ भेड़ पाली जा सकती हों, वहाँ ऊन के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया जाय। इसके लिए भेड की नस्ल सुधारने और ऊन का वर्गीकरण करने की ओर ध्यान दिया जाय।

७. चमड़ा पकाना

दुनियाभर में सबसे अधिक कच्चा चमड़ा हिंदुस्तान से निर्यात किया जाता है। यदि इस कच्चे चमड़े को पके हुए चमड़े

में परिवर्तित कर सके, तो अपने लाखों हरिजन भाइयों को काम दे सकेंगे। पकाने में समय अधिक लगने से पूँजी की जरूरत होती है। इसलिए यह काम सहकारिता के आधार से होना चाहिए। समितियों को पकाने की क्रिया के भिन्न-भिन्न विभागों के काम ठेके पर बाँट देने चाहिए और तैयार चमड़ा या उसकी बनी हुई चीजें बेचनी चाहिए।

(अ) यों तो चमड़े का पकाना हर प्रान्त में हो रहा है, परन्तु सब जगह अच्छी किस्म का नहीं बन रहा है। कलकत्ता का 'क्रोम' और मद्रास की 'गावी', जो सबसे अच्छे चमड़े समझे जाते हैं, की बराबरी का चमड़ा बनवाने की कोशिश कहीं नहीं हो रही है। और जगहों का बना चमड़ा इनसे कहीं हलकी किस्म का होता है। इसका कारण खोजकर हर जगह सुधरे रूप से पकाने का काम सिखाया जाना चाहिए।

(आ) कच्चे चमड़े और खालों के निर्यात का निषेध करने के लिए भारी निर्यात-कर लगा देना चाहिए।

(इ) कुछ चमारों के समूह को सस्ते दामों पर गाड़ी दी जाय, जिसमें वह मरे जानवर ढो सकें। आजकल गाड़ी न होने से मुर्दा जानवर घसीटकर ले जाना पड़ता है, जिससे उसकी कीमत करीब आधी रह जाती है।

(ई) आजकल जिस तरीके पर धंधा चल रहा है, वह बड़ा अस्वास्थ्यकर है और उसे बिलकुल बदल देना चाहिए। यह ऐसे हो सकता है कि उनके लिए गाँव से थोड़ी दूर जगह बना दी जाय और वहाँ इमारत, गड्ढे, नालियाँ, पानी आदि की ठीक व्यवस्था की जाय और ऐसी क्रियाएँ, जो विशेषतया अस्वास्थ्यकर हों, उनके लिए सादी मशीनों का इस्तेमाल किया जा सकता है। यदि इसके करने में तहसील या जिले के चर्मकारों को एक स्थान

पर रहना सुविधाजनक हो, तो ऐसा केन्द्रीकरण भी लाभदायक होगा। ऐसे चर्मालय केवल चर्मकारों की अपनी सहकारी समितियों द्वारा ही चलाये जायँ।

(उ) आज तो थोड़ी-सी जगहों में केन्द्रित रूप से बड़े पैमाने पर चमड़े का सामान बनता है और देशभर में भेजा जाता है। ऐसी व्यवस्था टूटने के लिए उनके माल पर आयात कर लगाकर या स्थानीय चर्मकारों को आर्थिक मदद देकर उन्हें वहाँ की आवश्यकता की वस्तुएँ जैसे बटुआ, जूते, चमड़े के बक्स, यहाँ तक कि पट्टे आदि का सामान तक बनाने के लिए प्रोत्साहित करना वांछनीय है।

(ऊ) स्वतन्त्र ठेकेदारों अथवा सहकारी समितियों को मरे जानवर के खून, मांस और हड्डी से खाद बनाने के लिए आर्थिक मदद दी जानी चाहिए। यह आर्थिक मदद खाद की मात्रा पर ही होनी चाहिए।

(ए) सरेस, ताँत, ब्रश और अन्य वस्तुएँ भी ये समितियाँ तैयार कर सकती हैं। सींग का काम भी चर्मकार-परिवार भली-भाँति कर सकेगा। उसको प्रोत्साहित करने के लिए आरम्भ काल में थोड़ी आर्थिक मदद मिलनी चाहिए और बाद में जो माल बने, वह सरकार खरीद ले। इस काम के साधन तो किराये पर दिये ही जाने चाहिए।

८. साबुन बनाना और रोशनी

(अ) सज्जी मिट्टी और अखाद्य तेलों की पूरी तरह से जाँच करके इनको गाँवों में साबुन बनाने के काम में लाना चाहिए। जहाँ भी ऐसी मिट्टी मिल सके, वहाँ से बिना टैक्स के ले लेने की इजाजत होनी चाहिए। यहाँ यह बता देना गलत न होगा कि इस क्षारिक तत्त्व के जमीन से निकाल लेने पर वह उपजाऊ बन जाती है।

(आ) न खाने योग्य तेल जैसे नीम, करंजी, रीठा, महुआ, रायन, भटकटाई के बीज आदि का इस्तेमाल आजकल बहुत कम होता है। इनका उपयोग जलाने के काम में लिया जाना चाहिए।

(इ) इस बात का पूरा प्रयत्न करना चाहिए कि प्रकाश के मामले में गाँव स्वावलंबी हों। इसी सिद्धांत पर बाहर से आनेवाली विदेशी लालटेन, मिट्टी का तेल आदि मिल की वस्तुओं पर, ग्राम-उद्योगों को बचाने के लिए, गाँव में आने के लिए भारी महसूल लगा देना चाहिए।

(ई) अखिल भारत ग्राम-उद्योग-संघ का निकाला हुआ वनस्पतिजन्य तेल से जलनेवाला 'मगन-दीप' प्रदर्शन-केन्द्रों को प्रचार के लिए बाँटा जा सकता है। स्थानीय कारीगरों को उसके बनाने में प्रोत्साहन देना चाहिए।

९. कागज बनाना

(अ) प्रान्तीय सरकारों को हाथ से बने कागज की दस्तकारी उन जेलों में शुरू करनी चाहिए, जहाँ उसके बनाने के लिए कच्चा माल पास ही मिलता हो। इस काम के लिए एक विशेषज्ञ द्वारा किस जगह कौन-सा माल मिल सकता है, इसकी जाँच होनी चाहिए।

(आ) हाथ से कागज बनाने में आवश्यक सब रसायन कागज केंद्रों को नियंत्रित दामों पर गाँव में ही मिलें।

(इ) अन्य उद्योगों के साथ-साथ इसका भी एक वर्कशाप हो, जहाँ इसकी मशीनरी बन सके और वहाँ से वितरित हो। मशीनें जैसे—बीटर, कॅलेण्डर, मोल्ड्स, स्क्रू-प्रेस, लिफाफा बनाने की मशीन आदि।

(ई) कागज बनानेवालों के लिए कच्चा माल और साधनों का वितरण : कागजियों की सहकारी समितियों के द्वारा नवीन-

तम पद्धति के औजार जैसे—हौलेण्डर बीटर, कॅलेण्डर मशीन, स्क्रू-प्रेस आदि किराये पर या किश्तों द्वारा खरीदने की सहूलियत देकर दिये जायँ। जहाँ शक्ति से चलनेवाली मशीनों द्वारा पल्प बनता हो, वहाँ उसे बाँटने का काम भी सहकारी समितियाँ कर सकती हैं।

आजकल जो सरकारी रद्दी कागज, जंगल की घास वगैरह, और दीगर ऐसा सामान जो, हाथ से कागज बनाने के काम में आ सकता है, नीलाम कर दिया जाता है और सबसे ऊँची बोली बोलनेवाले को दे दिया जाता है। वह इन्हीं सहकारी समितियों को सस्ते दामों पर हाथ कागज बनाने के लिए दिया जाना चाहिए। साथ ही साथ उनका बना कागज भी सरकार को अपने इस्तेमाल के लिए इन्हीं समितियों से ऐसे दामों पर खरीद लेना चाहिए, जिससे कागज बनानेवालों को जीवन-वेतन मिल सके।

(उ) शिक्षा :—प्रांतीय शिक्षा-केंद्रों में हाथ से कागज बनाने में निपुण कारीगर बनाने के लिए प्रबंध किया जा सकता है।

(ऊ) हाथ-कागज बनाने और इसके इस्तेमाल में आनेवाले साधनों को लाने, ले जाने के लिए रेलवे में प्रथम स्थान मिलना चाहिए और हाथ-बना कागज चुंगी और महसूल से बरी रहना चाहिए।

१०. कुम्हार का काम

(अ) प्रथम आवश्यकता तो प्रान्त में पायी जानेवाली सब मिट्टियों का वैज्ञानिक विश्लेषण है।

(आ) मिट्टियों को ठीक मात्राओं मे मिलाना एक विशेषज्ञ का काम है और इसके लिए गहरे वैज्ञानिक ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए यह काम सहकारी समिति द्वारा किसी केन्द्र

पर हो अथवा जेलों में हो और मिली मिट्टी ही कुम्हारों को दी जाय। इसके अलावा दूसरी सूरत यह है कि वर्तमान कुम्हारों को मिट्टी मिलाने के लिए नुस्खे बता दिये जायँ।

(इ) अन्य उद्योगों की तरह यहाँ भी अच्छी मिट्टी बाँटने और ठीक तरह के चाक किराये पर देने का काम सहकारी समितियों का होगा।

(ई) विशेष प्रकार के बर्तनों को आग और ग्लेज देने का काम भी सहकारिता के आधार पर करना होगा। मिट्टी मिलाने और चमक देने तथा आग तपाने का काम किराये पर या सहकारी संघों द्वारा कुम्हारों को खुद करना होगा। तपाने का काम, जो अब भी गाँव के कुम्हार करते हैं, सहयोग से मिलकर अच्छी प्रकार की भट्टियों में करने पर अच्छा होगा। ठीक से बनाई गयी भट्टियों में ईंधन का खर्च भी कम होगा। सभी ग्रामोद्योगों के लिए सस्ता ईंधन देने का जिक्र पहले भी किया जा चुका है।

ईंट और खपरैल बनाने के लिए बड़े भट्टे भी सहकारी समितियों द्वारा चलाये जा सकते हैं। ईंटों और खपरैलों की शक्ल और मजबूती में सुधार की आवश्यकता है।

(उ) कुम्हारों के लिए मिट्टी मिलाना, सुधरी हुई शक्ल बनाने और तपाने तथा चमक देने के अच्छे तरीकों की थोड़े समय की शिक्षा का किसी सुविधाजनक स्थान पर प्रबन्ध होना चाहिए।

११. चटाइयाँ और टोकरियाँ बनाना

यह एक ऐसा उद्योग है, जिसके लिए लगनेवाला कच्चा माल बहुत सस्ता और करीब-करीब सब जगह मिलनेवाला होता है। इसलिए आज है, उससे कहीं अधिक इसका चलन होना चाहिए।

१२. वर्तन ढालना

१३. खिलौने बनाना

१४. ग्रामीण स्कूलों और उद्योगों के लिए आवश्यक उपकरण बनाना और रस्सी बनाना

१५. संशोधित बढ़ईगिरी

१६. संशोधित लुहार-काम

नोट : उपर्युक्त ग्राम-उद्योगों में से कोई भी उद्योग नया नहीं है। वे देश के करीब-करीब सभी कोनों में हमारी अमर समाज-व्यवस्था के चिह्न के तौर पर अभी भी चल ही रहे हैं। पर कई जगह के कारीगर उसी पुराने ढर्रे पर काम किये चले जा रहे हैं। उन्हें कोई नयी दृष्टि नहीं है। इसलिए उन्हें किसी अच्छे कारीगर की सहायता और मार्गदर्शन की जरूरत है। नयी रुचि और नयी कल्पनाओं के अनुरूप नयी-नयी चीजें बनायी जाना जरूरी है। अच्छे टेक्निकल स्कूलों में पढ़े कारीगर इन ग्रामीण कारीगरों को नयी दृष्टि देने के लिए उन-उन सरकारी महकमों मे भेजना चाहिए। ऐसा करने से गाँव का कुम्हार-काम, गाँव की बढईगिरी आदि अधिक उपयुक्त और कलात्मक बन जायँगे।

सफाई, स्वास्थ्य और मकानात

ग्रामों में काम करनेवालों के लिए ग्रामों की सफाई पहला कदम है। हमारे गाँवों की जन-संख्या घटाने में या गाँवों से लोगों को भगाने में जिन रोगों का हाथ रहता है, वे उस गाँव में फैली गंदगी के कारण ही पैदा होते हैं। इसलिए नीचे दिये हुए मुद्दों पर खास जोर देना चाहिए।

सफाई

(अ) व्यक्तिगत सफाई की आदतें—परंपरा और अच्छी आदतों के कारण ग्रामीणों में वैसे ही व्यक्तिगत सफाई बहुत ऊँचे दर्जे की रहती थी। बदनसीबी से ऐसी बहुत सी अच्छी आदतें आधुनिक सुधार के नाम पर छोड़ दी गयी हैं। इसलिए पुरानी अच्छी आदतों की अच्छाई का लोगों को फिर से भान करा देने की जरूरत है और जहाँ जरूरत मालूम पड़े, वहाँ नयी आदतें भी डलवानी चाहिए।

सामूहिक सफाई

(आ) हमारे ग्रामीण जीवन की यह सबसे कमजोर कड़ी है। गाँवों के रास्ते, पगडंडियाँ, सार्वजनिक स्थान और तालाबों की मेड़ें मानो टट्टी करने के पाखाने ही हो गये हैं। गाँव के लोग अविवेक से चाहे जहाँ टट्टी करने बैठ जाते हैं और लोगों की चलने-फिरने की जगहें और यहाँ तक कि पीने का पानी भी गन्दा कर देते हैं। पर इसमे केवल गाँववालों का ही कसूर है, ऐसी बात नहीं है। देहातों मे संगठित टट्टियाँ और पेशाबघर नहीं होते और वहाँ के मकान इतने छोटे-छोटे और सटे हुए रहते हैं कि हरएक मकान के लिए टट्टी आदि की व्यवस्था करना मुमकिन नहीं होता। इसलिए सामूहिक तौर पर टट्टियाँ, स्नान-गृह, पेशाबघर आदि बनाना बहुत जरूरी है। साथ ही साथ तमाम कूड़ा-करकट और मैले की खाद बनाने की भी योजना होनी चाहिए। गाँव की सफाई तथा अर्थ-व्यवस्था के लिए यह निहायत जरूरी है। सामूहिक सफाई की दृष्टि से नीचे दी हुई बातों की व्यवस्था होनी चाहिए :

(आ) मैले और गंदे पानी का उपयोग सब्जी, फल के पेड़ आदि उगाने के लिए और संडासों की सफाई के लिए किया जाना चाहिए।

(इ) तमाम कूड़ा-करकट इकट्ठा कर उसकी खाद बना देनी चाहिए।

(ई) गाँव के कुएँ, पगडंडियों, तालाब और अन्य सार्वजनिक स्थान बिलकुल साफ-सुथरे रखे जाने चाहिए।

(उ) गाँव के लोगों के उपयोग के लिए और बच्चों के खेल-कूद के लिए छोटे बगीचे और खुले मैदान रखे जाने चाहिए।

सफाई और खाद

(१) सब तरह के प्रयोगों के बाद निश्चित करना चाहिए कि गाँव के पाखाने किस प्रकार के होने चाहिए। हो सकता है कि एक से अधिक तरह के पाखाने ठीक पड़ें और आवश्यक हों। कुएँदार (Bore-hole type) पेशाब-घर जगह-जगह गाँव में बनाये जायँ।

(२) गाँव के तमाम मैले और कूड़े-करकट की खाद बनाने का काम करने के लिए कुछ आर्थिक सहायता देकर ठेकेदारों को तैयार करना चाहिए। यह मदद खाद के परिमाण में हो, पर साथ ही साथ आकर्षक भी हो। ऐसा किये बगैर इस काम को करने के लिए कोई तैयार न होगा। कम-से-कम शुरू के कुछ दिनों या सालों तक ऐसी व्यवस्था करनी ही पड़ेगी।

(३) गाँव की सफाई के लिहाज से गाँव में मवेशी रखने या घरों में ही उन्हें बाँधने की प्रथा को रोकना चाहिए। यद्यपि समस्या हल होने में लम्बा समय लगेगा, परन्तु गाँव के बाहर अस्तबल और जानवरों के बाड़े बनाये बगैर उसे साफ रखना कठिन है।

जहाँ नयी बस्तियाँ बनें, वहाँ जानवरों के रहने का प्रबंध घरों से थोड़ा हटाकर किया जाना चाहिए। केवल सफाई के लिहाज से ही बहुत से लोग सहकारी डेअरी और मवेशी-घर रखने की योजनाएँ पेश करते हैं।

स्वास्थ्य

(अ) ग्रामीण खुराक—ग्रामों में अपर्याप्त पोषण का बोलबाला है। इसलिए गाँवों में पैदा होनेवाली या हो सकनेवाली चीजों का खाद्य की दृष्टि से क्या महत्त्व है, यह गाँववालों को समझाना चाहिए। संतुलित भोजन का अर्थ और ग्रामों में वह कैसे मिल सकता है, यह हर कुटुंब को समझ लेना चाहिए।

स्वास्थ्य-विभाग को सब केन्द्रों में इस दिशा में शिक्षण देने का काम मुस्तैदी से उठाना चाहिए। इसकी शुरुआत सरकार द्वारा चावल की मिलों पर पाबंदी लगाकर होनी चाहिए।

(आ) पीने का पानी—साफ पीने के पानी का प्रबंध एक बुनियादी जरूरत है। ग्रामों में अधिक कुएँ होने चाहिए और पुराने कुओं की मरम्मत होनी चाहिए। कहीं-कहीं साफ और सुरक्षित तालाबों से ही पीने के पानी का प्रबंध करना होगा। यह काम सबसे पहले किये जाने योग्य कामों में से एक है।

(इ) रोगों की रोक-थाम—रोगों का इलाज करने के बजाय रोगों की रोक-थाम पर अधिक जोर देना चाहिए। इसका मतलब हुआ संतुलित आहार, व्यक्तिगत तथा सामूहिक सफाई, इन पर जोर देना और सर्वसामान्य तौर पर स्वस्थ जीवन, मनोरंजन और व्यायाम की गुंजाइश रखना।

(ई) मामूली बीमारियाँ और सस्ती दवाइयाँ—ग्रामों मे होने-वाली मामूली बीमारियाँ और उनकी रोक-थाम और इलाज, इनकी

शिक्षा देनी चाहिए। कुदरती इलाज या देहाती जड़ी-बूटियों के सस्ते इलाज पर जोर देना चाहिए। सस्ते जंतुहन द्रव्य हरएक कुटुंब को दिये जाने चाहिए और उनका कैसे उपयोग करना, यह उन्हें सिखाया जाना चाहिए। इस दृष्टि से स्वास्थ्य-विभाग को विपैली जड़ी-बूटियों का उपयोग कहाँ तक किया जा सकता है, इसका अन्वेपण करना चाहिए।

(उ) मनोविनोद और व्यायाम—हर एक गाँव में मनोविनोद और व्यायाम के लिए खास खुली जगह का प्रबंध रहना चाहिए और वहाँ आवश्यक साधन-सामग्री मौजूद होनी चाहिए। सूर्य-नमस्कार, आसन और सांधिक देहाती खेलों को संगठित कर प्रोत्साहन देना चाहिए।

मकान

मनुष्य को अच्छे और अधिक स्वास्थ्यप्रद मकानों की बहुत जरूरत है। गाँवों के मकान गंदे, बहुत सटे हुए और किसी सामान्य योजनानुसार बने हुए नहीं होते। विचारपूर्वक कोई निश्चित योजना बनाकर यह हालत बदल देनी चाहिए। यह योजना ग्राम-पंचायत ही बनाये और उसे बनाते समय स्वास्थ्य-विभाग और लोककर्म-विभाग के अधिकारियों से विचार-विनिमय करे। उसमे नीचे दी हुई वातों पर जोर देना चाहिए :

(अ) गाँवों के बाहर मकान बनाने की एक योजना बनाकर गाँवों के मकानों की भीड़ कम करना।

(आ) भविष्य मे सब मकान केवल सहकारी सिद्धान्तों पर ही बनाये जायें।

(इ) मौजूदा मकानों में कैसे सुधार किये जा सकते हैं, इसका शिक्षा द्वारा प्रचार।

(ई) हरएक मकान का गंदा पानी बहा ले जाने के लिए नालियाँ होनी चाहिए और सड़क का पानी बहा ले जानेवाले गटर रास्तों पर होने चाहिए। पहला काम सोकपिट बनाकर और उन्हें समय-समय पर साफ करवाकर हो सकता है। दूसरा काम सस्ती—फिर वे भले ही खुली क्यों न हों—नालियाँ बनवाकर और उन्हें समय-समय पर साफ कराकर और उनमें जंतुनाशक द्रव्य डालकर किया जा सकता है। आमतौर से तमाम गंदा पानी साग-सब्जी और फलझाड़ों के बगीचे मे छोड़ना चाहिए।

(उ) गाँवों के मकान बहुत छोटे होते हैं और उनमें रहनेवालों की संख्या बहुत होती है। इसलिए हरएक गाँव मे सार्वजनिक पाखाने और स्नानगृह होने चाहिए।

(ऊ) जहाँ कहीं गँदला पानी इकट्ठा होता हो, उन गड्ढहों को पाट देना चाहिए, क्योंकि ऐसे गदे पानी के डबरे मलेरिया आदि बुखार के कारण बन जाते हैं।

(ए) किसी निश्चित योजनानुसार गाँव के रास्ते और पग-डंडियाँ निश्चित करनी चाहिए।

(ऐ) सरकारी स्वास्थ्य-विभाग और लोककर्म-विभागों को चाहिए कि वे देहातों की दृष्टि से आदर्श मकान कैसे होने चाहिए, इसके नमूने बनवाकर लोगों को बतायें।

(ओ) चंद गाँवों में सफाई और स्वास्थ्यकर वातावरण की दृष्टि से अभिष्ट रद्दोबदल कर सकना यदि नामुमकिन हो, तो वे गाँव नजदीक के ही खुले मैदान में क्रमश योजनापूर्वक बसाने चाहिए। इस नयी जगह मे जगह तो मुफ्त ही मिलनी चाहिए और सहकारी सिद्धान्त पर मकान बनाने के लिए कुछ आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए।

(औ) मकानात बनवाने में कोई भी नयी योजनाओं में आज के समान हरिजनों की बस्ती गाँव से अलग न रखी जाय, इसकी खास खबरदारी रखी जाय।

ग्रामीण शिक्षण

ग्रामीण पाठशालाएँ—चूँकि हमारी नजरों के सामने जो ग्राम-सुधार की योजना या कल्पना है, उसमें ग्रामों का पुनर्निर्माण ही निहित है। इसलिए इसके लिए जो क्षेत्र चुने जायँ, उनकी तमाम शालाओं को बुनियादी पाठशालाओं में परिवर्तित कर देना वहाँ की सरकार का बुनियादी शिक्षण के प्रचार की दृष्टि से पहला कदम होना चाहिए, ऐसा हम निस्संदेह कह सकते हैं। इतना अग्रस्थान देना ग्राम-सुधार-विभाग को भी फायदे का साबित होगा। इन चुने हुए स्थानों में बुनियादी पाठशालाएँ अन्य स्थानों के बनिस्बत तेजी से चल निकलेंगी, क्योंकि उनके पीछे ग्रामों के पुनर्निर्माण-कार्य की संयुक्त पार्श्वभूमि रहेगी।

पूरा बुनियादी शिक्षण केवल ६ और १५ साल के बीच के लड़के-लड़कियों के लिए होगा और वह भी पूरे सात साल का होगा। पर चुने हुए क्षेत्र में ऐसे प्रौढ या सयाने लोग ही ज्यादा मिलेंगे, जिन्हें नाममात्र का भी शिक्षण नहीं मिला है। ग्राम-सुधार-विभाग का सबसे ज्यादा संबंध तो इन्हीं प्रौढों से आयेगा, इसलिए उनकी तालीम के जितना और कोई कार्यक्रम महत्त्व नहीं रखेगा।

बुनियादी तालीम और प्रौढ़ों की तालीम के निस्बत नीचे दिये मुताबिक सूचनाएँ की जाती हैं :

१. बुनियादी तालीम (अ) ऐसी कोई व्यवस्था निर्माण करनी चाहिए, जिसके जरिये शिक्षा-विभाग का बुनियादी शिक्षा का कार्य-

क्रम और ग्रामों के सुधार का कार्यक्रम इनमें सहयोग निर्माण हो सके।

(आ) ऐसी योजना बनानी चाहिए, जिसके अनुसार चुने हुए क्षेत्र के देहातों की पहली दो कक्षाओं का रूपांतर अगले १-२ साल में बुनियादी में हो सके और शेष कक्षाएँ और तीन साल में बुनियादी हो जानी जाहिए। इस प्रकार कुल ५ सालों में चुने हुए क्षेत्र की तमाम प्राथमिक शालाएँ बुनियादी पाठशालाएँ बन जानी चाहिए।

(इ) ऐसा कर सकने के लिए मौजूदा हरएक पाठशाला के दो-दो शिक्षकों को आगामी १-२ वर्षों मे बेसिक ट्रेनिंग के लिए भेज देना चाहिए और बचे शिक्षकों को अगले तीन साल में ट्रेनिंग के लिए भेज देना चाहिए।

नोट—जब बुनियादी शिक्षण शुरू हो जायगा, तब उसके साथ ही साथ गाँव की योग्यता और संगठन भी बढ़ेगा। इस प्रकार बुनियादी शिक्षण ग्रामों के सुधार का एक अच्छा जरिया बन जायगा। ग्राम-सुधार के साथ ही साथ यदि बुनियादी शिक्षा नहीं बढ़ती, तो वह एक अनहोनी-सी बात होगी और कभी सफल न होगी।

२ प्रौढ-शिक्षा—यदि स्थायी और दूरदृष्टि के फायदे के लिए बुनियादी शिक्षा जरूरी हो, तो तात्कालिक फायदे और काम चलाने की दृष्टि से गाँवों के प्रौढ़ों की तालीम बहुत अधिक महत्त्व रखती है। क्योंकि वैसे ही गाँव के लोगों की पढ़ाई बहुत कम रहती है, इसलिए यदि उनकी बुद्धि हम विकसित नहीं करते, तो हमारे कार्यक्रम की एक भी मद सफलतापूर्वक पूर्ण नहीं की जा सकेगी।

सेवाग्राम, वर्धा के हिंदुस्तानी तालीमी संघ ने विशेपज्ञों की एक कमेटी बैठाकर प्रौढ़ों की तालीम की एक योजना बनायी है और गांधीजी उसे गौर से देख गये हैं। इस योजना के अनुसार केवल

लिखना-पढना आना याने न तो सयानों की तालीम की शुरुआत ही है और न उसका अंत। सयानों की तालीम तो उसे कह सकेंगे, जिसके कारण उनका जीवन पहले से अधिक सुखी, परिपूर्ण और अधिक समृद्ध बने। वह मानो उनके जीवनभर की और उसके अंत तक चलनेवाली शिक्षा है। सयानों की तालीम के निस्वत नीचे लिखी हुई सूचनाएँ हैं :

(अ) चुने हुए क्षेत्र में से कम-से-कम एक शिक्षक को हिन्दुस्तानी तालीमी संघ द्वारा बनायी हुई योजना के अनुसार कम-से-कम ६ महीने सयानों की तालीम की शिक्षा दी जानी चाहिए। शिक्षण की व्यवस्था सीधे तालीमी संघ के मातहत हो। भरती किये जानेवालों की योग्यता उनके विश्वविद्यालयों की उपाधियाँ नहीं रहेंगी, बल्कि उन्हें गाँवों से कितना प्रेम है, रचनात्मक कार्यक्रम के कम-से-कम १-२ कार्यों का उन्हें अनुभव है या नहीं, उन्हें किसी ग्राम-उद्योग की प्रत्यक्ष जानकारी है या नहीं, उनमें संगठन-क्षमता है या नहीं, कोई काम लगन से कर सकने की शक्ति है या नहीं और ग्रामों की सर्व-साधारण बातें और वहाँ की हालत की जानकारी है या नहीं—ये बातें होंगी। इस प्रकार सयानों की तालीम का कार्य करनेवाले हरएक केन्द्र के एक-एक कार्यकर्ता को ६ माह तक हिंदुस्तानी तालीमी संघ के मार्ग-दर्शन से ऐसे किसी ग्राम-सेवा-केन्द्र में ट्रेनिंग दी जायगी, जिसने ग्राम-सेवा-केन्द्र के कार्य में काफी नामवरी हासिल की हो।

(आ) इस प्रकार शिक्षा पाये हुए कार्यकर्ता ६ माह के बाद अपने-अपने केन्द्रों में सयानों की तालीम का प्रत्यक्ष कार्य शुरू कर देंगे और इस विषय की अपने केंद्र के कुछ लोगों को तालीम भी देंगे।

(इ) इस प्रकार जैसे-जैसे ट्रेण्ड कार्यकर्ताओं की संख्या बढ़ती जायगी, वैसे-वैसे सयानों की तालीम के केंद्रों की संख्या बढ़ाते

जाना चाहिए, ताकि आगे चलकर समूचे क्षेत्र में इन केंद्रों क
जाल-सा बिछ जाय।

(ई) सयानों की तालीम का हरएक केंद्र एक सजग-ग्राम-सु
केंद्र भी बन जायगा। उन्हें उद्योग तथा शिक्षण के तमाम स
और साहित्य की व्यवस्था होनी चाहिए, जिनमें एक छोट
ग्रामीण अजायबघर, एक छोटा-सा ग्रंथालय और वाचनालय,
वर्कशॉप, एक मॅजिक लैंटर्न सेट आदि शामिल होने चाहिए।

नोट—ऊपर निर्दिष्ट किया हुआ ग्रामीण शिक्षा का पूरा
क्रम अकेले शिक्षा-विभाग को ग्राम-सुधार-विभाग के सहयो
बिना अमल में लाना असंभव होगा। यह सहयोग प्राप्त हो स
की दृष्टि से मेरी ऐसी सूचना है कि किसी मंत्री की सदार
३ सदस्य शिक्षा-विभाग से और ३ ग्राम-सुधार-विभाग
लेकर कुल ७ सदस्यों की एक स्थायी समिति बना दी जाय।
उस-उस विभाग के मंत्री को अवश्य लिया जाय। यह कमेटी
योजना मंजूर करे, उसके मुताबिक पूरे चुने हुए क्षेत्र की
का काम किया जाय।

स्थायी समितियाँ—इसी प्रकार और ७ सदस्यों की एक स
नीचे दिये हुए विभागों में परस्पर सहयोग निर्माण करने के
बना ली जानी चाहिए: (१) ग्राम-सुधार-विभाग, (२)
विभाग, (३) पशु-वैद्यक-विभाग, (४) जंगल-विभाग, (५) उ
विभाग, (६) स्वास्थ्य तथा वैद्यक-विभाग और (७) स्था
स्वराज्य-विभाग।

ग्राम का संगठन

यह तीन संस्थाओं की मार्फत किया जा सकेगा: (१)
की व्यवस्था के लिए ग्राम-स्वराज्य की तौर पर चलायी जाने
ग्राम-पंचायत, (२) ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए बहुधंधी

कारी संस्था और (३) गैरसरकारी तौर पर तमाम ग्रामीणों की शक्ति ग्रामोत्थान की योजना की सफलता के लिए केंद्रित करने के लिए एक ग्राम-सेवा-संघ।

१. ग्राम-पंचायत

हर गाँव की या कुछ गाँवों की मिलकर एक ग्राम-पंचायत होनी चाहिए। इसका चुनाव प्रौढ़ मतदान की बुनियाद पर होना चाहिए और उसकी सुविधा के लिए गाँव या गाँवों को कई सुविधाजनक वॉर्डों में बाँट देना चाहिए।

गाँवों से सीधा संबंध रखनेवाली हरएक बात की जिम्मेदारी इस ग्राम-पंचायत की होनी चाहिए। उदाहरणार्थ गाँवों के रास्ते, गाँवों के पीने के पानी का इंतजाम, गाँवों की शिक्षा, गाँवों के दवाखाने, गाँवों की सफाई, कुछ हद तक न्यायदान, गाँवों की रोशनी का इंतजाम आदि की व्यवस्था ग्राम-पंचायत के जिम्मे होनी चाहिए। हरएक गाँव में उपर्युक्त सुविधाएँ अवश्य होनी चाहिए। यदि इकट्ठा होनेवाला पैसा और इस कार्य के लिए दिया जानेवाला उसका हिस्सा पर्याप्त न होता हो, तो सरकार को चाहिए कि वह फर्क की रकम स्वयं दे।

लाइब्रेरी, सभा-भवन, प्रदर्शन आदि एक दूसरी किस्म की सुविधाएँ हैं, जिनका खर्च कुछ स्थानीय चंदे से और कुछ सरकार की ओर से मिलना चाहिए।

चुने हुए क्षेत्र की सभी पंचायतों का एक संघ होना चाहिए। इस यूनियन का काम अपने मातहत सब पंचायतों के आवश्यक कामों को एक-दूसरे से संबद्ध करना होगा। ये संघ पंचायतों को मार्गदर्शन करेंगे, उनका निरीक्षण करेंगे और उनके हिसाबों की जाँच करेंगे। ये संघ बुनियादी और उत्तर-बुनियादी शिक्षा की

व्यवस्था करेंगे और बड़े अस्पताल और प्रसूतिका-गृह चलायेंगे। इन संघों के मातहत एक सहायक इंजीनियर रहा करेगा, जो सब कामों के तखमीने बनायेगा और काम पूरे करेगा।

उस क्षेत्र की तमाम पंचायतों के नुमाइंदे इन संघों में रहेंगे। इनके खर्च के लिए पंचायतों से और सरकार से ग्राण्ट मिला करेगी।

विशेष सूचना

ग्राम-पंचायतें केवल व्यवस्था देखनेवाली समितियाँ ही न बनें। उनको चाहिए कि वे ग्रामीणों को सच्चे नागरिक की जिम्मेवारियों से परिचित करायें और हर बालिग व्यक्ति को ग्रामीण नागरिक के नाते अपने हक क्या हैं और कर्तव्य क्या हैं, इसका भान करायें। सामाजिक सुधार, जैसे जुआ और तत्सम बुराइयों को रोकना, लोगों की अंधविश्वास की प्रवृत्ति हटाना और अस्पृश्यता आदि को दूर करना, आदि काम भी उन्हे उठाने चाहिए।

सदियों से हरिजन और आदिवासी लोग पूरे समाज से पृथक् से हो गये हैं। वे समाज के ही एक अंग हैं और उन्हें अलग रखना सामाजिक अन्याय है। इसके लिए जोरदार और खास संगठित प्रयत्न होना चाहिए। समाज मे स्त्रियों की दर्दनाक हालत भी एक गंभीर सवाल ही है, पर यह किसी एक संस्था या विभाग द्वारा हल नहीं किया जा सकता। इसके लिए तो सारे समाज को जाग्रत करने और पुराने विचारों मे सुधार करने की जरूरत है। इस दिशा मे खास ध्यान देने की जरूरत है। इस काम के लिए कुछ अनुभवी और गृहशास्त्र मे (उदाहरणार्थ रसोई बनाना, दवा-दारू करना, बुनाई, दर्जी काम आदि) निपुण स्त्रियाँ उपयुक्त साबित होना मुमकिन है।

२. बहुधंधी सहकारी समितियाँ

जिस प्रकार गाँव की राज्यव्यवस्था का काम ग्राम-पचायतें करेंगी, उसी प्रकार उसकी अर्थव्यवस्था का काम ये बहुधंधी सहकारी समितियाँ करेंगी, ये समितियाँ नीचे दिये हुए काम करेंगी :

१. गाँव का अनाज एकत्र कर उसका संग्रह करना।

२. खाद्य पदार्थों पर आवश्यक क्रियाएँ करना।

३. गाँवों के उत्पादन का और आवश्यक आयात किये माल का संतुलित वितरण।

४. कृषि की विभिन्न क्रियाओं में तथा ग्रामोद्योगों में लगनेवाले औजारों का संग्रह रखना।

५. कपास, ऊन, लकड़ी, धातु आदि आवश्यक कच्चे मालों का संग्रह करना।

६. तैयार माल की बिक्री करना।

७. गाँव की अतिरिक्त पैदावार के बदले मे बाहर से आयात की जानेवाली जरूरी चीजें लाना।

८. परस्पर सहकारिता के सिद्धान्त पर प्रमुख ग्रामोद्योगों को संगठित करना, जिससे उन उद्योगों से मिलनेवाला मुनाफा या लाभ यथासंभव उस समूचे गाँव को ही मिले। तमाम लोगों को उपयुक्त कामों में संलग्न रखने की फिक्र रखनी चाहिए, ताकि थोड़ी भी मनुष्यशक्ति बेकार न जाने पाये। उद्देश्य यह हो कि कोई भी बेकार या अर्ध-बेकार न रहने पाये।

९. ग्रामीण कारीगरों को अपनी कलाओं में उन्नति करने की प्रेरणा दे सकें, ऐसे सभी कुशल कलाकार जुटाने चाहिए। इस

व्यवस्था करेंगे और बड़े अस्पताल और प्रसूतिका-गृह चलायेंगे। इन संघों के मातहत एक सहायक इंजीनियर रहा करेगा, जो सब कामों के तखमीने बनायेगा और काम पूरे करेगा।

उस क्षेत्र की तमाम पंचायतों के नुमाइंदे इन संघों में रहेंगे। इनके खर्च के लिए पंचायतों से और सरकार से ग्राण्ट मिला करेगी।

विशेष सूचना

ग्राम-पंचायतें केवल व्यवस्था देखनेवाली समितियाँ ही न बनें। उनको चाहिए कि वे ग्रामीणों को सच्चे नागरिक की जिम्मेवारियों से परिचित करायें और हर बालिग व्यक्ति को ग्रामीण नागरिक के नाते अपने हक क्या हैं और कर्तव्य क्या हैं, इसका भान करायें। सामाजिक सुधार, जैसे जुआ और तत्सम बुराइयों को रोकना, लोगों की अंधविश्वास की प्रवृत्ति हटाना और अस्पृश्यता आदि को दूर करना, आदि काम भी उन्हे उठाने चाहिए।

सदियों से हरिजन और आदिवासी लोग पूरे समाज से पृथक् से हो गये हैं। वे समाज के ही एक अग हैं और उन्हें अलग रखना सामाजिक अन्याय है। इसके लिए जोरदार और खास संगठित प्रयत्न होना चाहिए। समाज मे स्त्रियों की दर्दनाक हालत भी एक गंभीर सवाल ही है, पर यह किसी एक सस्था या विभाग द्वारा हल नहीं किया जा सकता। इसके लिए तो सारे समाज को जाग्रत करने और पुराने विचारों मे सुधार करने की जरूरत है। इस दिशा मे खास ध्यान देने की जरूरत है। इस काम के लिए कुछ अनुभवी और गृहशास्त्र मे (उदाहरणार्थ रसोई बनाना, दवा-दारू करना, बुनाई, दर्जी काम आदि) निपुण स्त्रियाँ उपयुक्त साबित होना मुमकिन है।

२. बहुधंधी सहकारी समितियाँ

जिस प्रकार गाँव की राज्यव्यवस्था का काम ग्राम-पचायतें करेंगी, उसी प्रकार उसकी अर्थव्यवस्था का काम ये बहुधंधी सहकारी समितियाँ करेंगी, ये समितियाँ नीचे दिये हुए काम करेंगी :

१. गाँव का अनाज एकत्र कर उसका संग्रह करना।

२. खाद्य पदार्थों पर आवश्यक क्रियाएँ करना।

३. गाँवों के उत्पादन का और आवश्यक आयात किये माल का संतुलित वितरण।

४. कृषि की विभिन्न क्रियाओं में तथा ग्रामोद्योगों में लगनेवाले औजारों का संग्रह रखना।

५. कपास, ऊन, लकड़ी, धातु आदि आवश्यक कच्चे मालों का संग्रह करना।

६. तैयार माल की बिक्री करना।

७. गाँव की अतिरिक्त पैदावार के बदले में बाहर से आयात की जानेवाली जरूरी चीजें लाना।

८. परस्पर सहकारिता के सिद्धान्त पर प्रमुख ग्रामोद्योगों को संगठित करना, जिससे उन उद्योगों से मिलनेवाला मुनाफा या लाभ यथासंभव उस समूचे गाँव को ही मिले। तमाम लोगों को उपयुक्त कामों में संलग्न रखने की फिक्र रखनी चाहिए, ताकि थोड़ी भी मनुष्यशक्ति बेकार न जाने पाये। उद्देश्य यह हो कि कोई भी बेकार या अर्ध-बेकार न रहने पाये।

९. ग्रामीण कारीगरों को अपनी कलाओं में उन्नति करने की प्रेरणा दे सकें, ऐसे सभी कुशल कलाकार जुटाने चाहिए।

प्रकार की शिक्षा और निरीक्षण का सारा खर्च सरकार को उठाना चाहिए।

१०. हरएक समूचे क्षेत्र के लिए एक ट्रेण्ड को-ऑपरेटिव इन्स्पेक्टर होना चाहिए।

११. गॉव को तथा ग्रामीणों को तमाम उपलब्ध जानकारी मयस्सर कराना और उनका मार्गदर्शन करना।

३. ग्राम-सेवा-संघ

अब यह सवाल उठाया जा सकता है कि ग्राम-पंचायत और बहुधंधी सहकारी समितियाँ जब ग्राम की व्यवस्था कर रही हैं, तब फिर ग्राम-सेवा-संघों की क्या जरूरत है? पर यह न भूलना चाहिए कि ग्राम-पंचायत और बहुधधी सहकारी समितियों में केवल कुछ चुने हुए प्रतिनिधि ही काम करेंगे और उनको चुन देनेवाले तमाम बालिग लोग क्या केवल प्रेक्षकों का ही काम करते रहेंगे? यदि हम उन्हें किसी कार्य के लिए प्रयुक्त न करेंगे, तो उनकी ऐसे प्रेक्षकों की-सी हालत रहेगी। हमारे खयाल से ग्राम-सेवा संघ गैरसरकारी स्वयंसेवकों की संघटना होगी, जिसके सदस्य ऐसे काम करेंगे, जो ग्राम-पंचायत और बहुधंधी सहकारी समिति के कार्यों के पोषक होंगे। ग्राम-सुधार अफसरों को चाहिए कि वे ग्राम्-सेवा-संघों के संगठन में, उनको बलशाली बनाने मे और उनका पूरा उपयोग कर लेने मे प्रयत्नशील रहें। ये संघ स्वतंत्र रहेंगे, उनका अपना निजी विधान, कायदा कानून और कोप रहेगा। सरकार ऐसे संघों की आजादी कायम रखते हुए इन्हें ग्राण्ट दे सकती है। ग्राम-सेवा-संघ गाँवों की सफाई करने के लिए, ग्रामीण सभाएँ और त्योहारों मे प्रबंध रखने के लिए, ग्रामीणों की जानो-माल की रक्षा करने के लिए और बाढ़ या किसी संक्रामक रोग के प्रादुर्भाव

के समय लोगों की सेवा करने और राहत पहुँचाने के लिए स्वयं-सेवक तैयार रखने का काम करेंगे। सच पूछा जाय, तो हरएक सरकारी, ग्राम-पंचायती या सहकारी समिति के वैतनिक कर्मचारी के साथ कई अवैतनिक स्वयंसेवक काम करने के लिए जरूरी है। ऐसे स्वयंसेवक ग्राम के लोगों में से ही तैयार करने का काम ये ग्राम-सेवा-संघ करेंगे।

नोट—अब तक हमने ग्रामों के संगठन के लिए ग्राम-पंचायत, बहुधंधी सहकारी समितियाँ और ग्राम-सेवा-संघ का जिक्र किया। पर ग्रामों के संगठन का अन्तिम ध्येय तो ग्रामों को खुराक, कपड़ा और अन्य महत्त्व की जरूरियातों के निस्बत स्वावलंबी बनाना है। यही ग्रामीण जीवन की बुनियाद है और वह हमें शांतिमय उपायों से और प्रजातंत्र के सिद्धान्तों के अनुसार पक्की करनी है।

ग्रामीण संस्कृति

ग्रामीण संस्कृति की ओर किसीका भी ध्यान नहीं है। पर उसकी पुख्ता बुनियाद ग्रामीण स्वायत्तशासन या ग्रामीण स्वावलंबन के बिना कभी स्थायी नहीं हो सकती। कई सदियों के अनुभवों के बाद भारत ने एक ऐसी संस्कृति निर्माण की है, जो सब किस्म के आघात सहकर पुख्ता बन गयी है। उसका नये दृष्टिकोण से संशोधन और परि-वर्धन होना चाहिए। इस संस्कृति की देहातों की स्त्रियाँ खास वारिस हैं और इसीसे ग्रामीण जीवन को सुंदरता और बल मिलता है। कई बार देखा गया है कि देहात की बुढ़िया विश्वविद्यालयों के स्नातकों को अपनी व्यावहारिक बुद्धिमानी और जीवन की समस्याओं के समाधानों से मात दे देती है। इस संस्कृति के पनपाने के लिए नीचे दी हुई सूचनाएँ की जाती हैं :

१. ग्रामों की परंपरा और आदतें, ग्रामों की संस्थाएँ और ग्रामों के इतिहास आदि का अभ्यास किया जाना चाहिए।

२ लोकगीत, लोक-कहानियाँ और लोककला आदि का अभ्यास होना चाहिए।

३ कला-कौशल के हस्तोद्योग और अन्य ग्रामीण कलाओं का पुनरुज्जीवन और संशोधन होना चाहिए।

४. ग्रामीणों की शिक्षा की दृष्टि से भजन, कीर्तन, नाटक आदि संगठित करने चाहिए।

५ ग्रामीण उत्सव और अन्य महत्त्व के धार्मिक उत्सव संगठित कर जातिपाँति-निरपेक्ष ग्रामीण एकता बढ़ाना—विभिन्न जातियों के और धर्मों के अनुयायियों को एक-दूसरे के धार्मिक उत्सवों में खुशी से भाग लेने के लिए प्रवृत्त करना चाहिए।

६ ग्रामीण वाचनालय, संग्रहालय और अध्ययन-मंडल संगठित करना चाहिए।

७. खेल-कूद, लोकनृत्य, दौरे आदि खुले मैदानों में किये जानेवाले मनोरंजक कार्यक्रम संगठित करने चाहिए।

नोट—ग्रामीण संस्कृति में जो नवीनता लानी है, वह यह है कि वह सृजनात्मक बने और उसके कारण लोगों के मूल्यांकन के पैमाने बहुत ऊँचे दर्जे के बनें। इन्हीं मूल्यों का व्यक्तिगत तथा सामूहिक जीवन मे आचरण होना चाहिए।

अच्छी नस्ल के मवेशियों की पैदावार

मवेशियों की नस्ल सुधारने के फार्म रखने का काम सरकार को ज्यादा जोर से करना चाहिए। हरएक प्रांत में जहाँ जिस अच्छी नस्ल के मवेशी हैं, उन्हें बनाये रखने की या सुधारने की कोशिश करनी चाहिए। आवश्यकतानुसार बढ़िया सांड रखने

के लिए भी आर्थिक सहायता दी जाय। जहाँ तक हो, गो-सेवा-संघ, वर्धा के सिद्धान्तों का अनुकरण करने का प्रयत्न करना चाहिए।

सड़कें

ऐसी सब सड़कें, जो मोटरों के लिए गाँवों से जाती हों, तारकोल की हों और उनके बनाने-रखने का सब खर्च मोटर-वालों से लिया जाय। मोटरों और पेट्रोल पर लाइसेन्स और महसूल आदि इतना होना चाहिए कि उनके लिए बनायी गयी सब सरकारी सड़कों का खर्चा निकल सके। कच्ची सड़कों पर, बिना विशेष आज्ञा के, मोटर चलाना मना किया जाना चाहिए।

जंगल

जंगल-विभाग की नीति आमूलाग्र बदल देनी होगी। जंगल के महकमे की नीति सरकार को मिलनेवाले महसूल की ओर ध्यान देने की न होकर लोगों की आवश्यकताओं की ओर ध्यान देने-वाली होनी चाहिए। जंगल से मिलनेवाली लकड़ी, लाख आदि वस्तुएँ काम में आने लायक अवस्था में जनता को मिलनी चाहिए। लकड़ी जंगल से ही 'सीजन' (तैयार) की जानी चाहिए। वन की सब योजनाएँ आसपास के गाँवों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बननी चाहिए। जंगलों के दो भाग हों :

(१) एक में बढ़ई के काम की लकड़ी के वास्ते लम्बे समय की योजना होनी चाहिए और उसी हिसाब से पेड़ लगाने चाहिए; और

(२) दूसरा वह, जिससे कि जलाने को ईंधन, घास आदि मुफ्त या नाममात्र दामों में मिल सके।

ताड़-गुड़, हाथ-कागज और कुम्हार-काम आदि दस्तकारियाँ ऐसी हैं, जो सस्ते ईंधन या घास के मिलने पर ही पनप सकती हैं।

इस योजना के अंतर्गत कार्यकर्ताओं को शिक्षण देने की योजना

१. ग्राम-सुधार-योजना का काम जिन कार्यकर्ताओं पर पड़नेवाला है, उन्हें पर्याप्त, अच्छी तरह की और सर्वंकष शिक्षा देने का प्रबंध होना चाहिए। यह कोई इनकार नहीं कर सकता। यह सारा-का-सारा काम एकदम नया है और उसमें काफी कठिनाइयाँ आना संभव है। इसलिए जिसकी दृष्टि निर्दोष है और जिसकी आँखों के सामने अपने काम का स्पष्ट चित्र है, ऐसे ही आदमी यहाँ काम दे सकेंगे। ऐसे कामों के लिए 'अन्ट्रेंड' आदमी एकदम नुकसान कर देंगे। हम बिना हिचकिचाहट कह सकते हैं कि 'ट्रेंड' कार्यकर्ताओं के अभाव में सारा काम मटियामेट हो जायगा।

२ ट्रेंड कार्यकर्ता बनाने के काम की मोटी रूपरेखा—इसमें मुख्य सवाल हैं : (१) किन्हें शिक्षा देनी चाहिए, (२) ट्रेनिंग देनेवाले कौन होंगे, (३) ट्रेनिंग का काम कहाँ होगा, (४) ट्रेनिंग कब शुरू होगी और कितने दिन चलेगी, (५) ट्रेनिंग किन-किन बातों में होगी और कौन उसका अभ्यास-क्रम बनायेगा, (६) ट्रेनिंग का माप क्या है याने आदमी कौन-कौनसी बातें और किस हद तक सीख लेने पर कार्य करने योग्य समझा जायगा, (७) ट्रेनिंग का खर्च कितना होगा और वह कहाँ से लाया जायगा ?

वास्तव में ट्रेनिंग का काम शुरू करने में देर नहीं लगानी चाहिए। सरकार को चाहिए कि वह उसे बहुत जरूरी करार दे और फौरन शुरू कर दे।

३ शिक्षण की तफसील—उपर्युक्त हरएक मद के नीचे तफसीलवार योजना इस प्रकार रहेगी :

(अ) किनको शिक्षा देनी चाहिए—[illegible] सुधार का काम करनेवालों को स्वेच्छया लिए होने चाहिए और उनके अलग-अलग वर्ग रखने पड़ेंगे। पर इन लोगों के अलावा स्वेच्छा से अवैतनिक काम करने के [illegible] स्वयंसेवकों को यदि ग्राम-सेवा-संघ चुने, तो उन्हें भी शिक्षित करना पड़ेगा। इन स्वयंसेवकों को ही वास्तव में ज्यादा महत्त्व देना होगा, क्योंकि एक सरकारी वैतनिक अफसर के साथ कई अवैतनिक [illegible] कार्यकर्ता रहेंगे, तभी असली काम बन सकेगा।

(आ) शिक्षा-केंद्रों के लिए अध्यापक—यह तो निर्विवाद है कि सुयोग्य अध्यापकों बिना अच्छी पढ़ाई होना नामुमकिन है, क्योंकि उनके बिना हम अपना समय, शक्ति और पैसा बरबाद ही करते रहेंगे। इसलिए अध्यापकों का चुनाव करते समय बड़े सतर्क रहने की जरूरत है।

अध्यापकों की दो किस्में होंगी—एक तो कायम मुकामी और, केंद्र में ही रहेंगे और दूसरे, समय-समय पर आनेवाले विशेषज्ञ। कायम मुकामी-अध्यापक कम-से-कम दो तो होने ही चाहिए; एक पर्यवेक्षक और दूसरा खेती या दूसरे किसी दस्तकारी का विशेषज्ञ। पर्यवेक्षक स्वयं या तो खेती-विशेषज्ञ या क्राफ्ट-विशेषज्ञ होना चाहिए, ताकि इन दोनों को मिलाकर एक कृषिविशेषज्ञ और दूसरा क्राफ्टविशेषज्ञ आप ही आप मिल जायगा।

समय-समय पर आनेवाले विशेषज्ञ अपने-अपने विषय की अभ्यास-क्रम में शुमार की हुई बातें कुछ दिनों में विद्यार्थियों को पढ़ा दिया करेंगे। ऐसे सब अध्यापकों की एक फेहरिस्त बना लेनी चाहिए और हरएक को अभ्यास-क्रम में का कोई निश्चित विषय और उसका समय निश्चित कर देना चाहिए, तभी [illegible] में पढ़ाई पूरी हो सकेगी।

पर्यवेक्षक और कायम मुकामी-अध्यापकों को मासिक वेतन दिया जायगा। समय-समय पर आनेवाले विशेषज्ञों को आने-जाने का सफर खर्च, उनके रहने और भोजन का मुफ्त इंतजाम और यदि अत्यंत आवश्यक हो, तो कुछ पुरस्कार देना चाहिए।

(इ) ट्रेनिंग की शुरुआत और मियाद—हमारी ऐसी निश्चित राय है कि इस योजनांतर्गत कार्यकर्ताओं को शिक्षण देने के काम की पूरी तैयारियाँ ३१ मार्च, १९४९ के पहले पूरी हो जानी चाहिए, ताकि १ अप्रल, १९४९ से ग्रामीण संगठकों तथा तत्सम लोगों को शिक्षण देने का एक और ग्राम-सेवकों तथा तत्सम लोगों को शिक्षण देने का दूसरा, ऐसे दोनों के शिक्षण-केंद्र काम करने लग जायँ। ट्रेनिंग के काम में यदि ढिलाई हुई, तो उसका मतलब होगा, समूचे कार्यक्रम को अमल में लाने में ढिलाई। इसलिए ढिलाई को कहीं स्थान नहीं मिलना चाहिए।

४. ट्रेनिंग का अभ्यास-क्रम—इसके लिए हमारी सूचना है कि दो या तीन व्यक्तियों की एक कमेटी बनायी जाय और उन्हें ग्राम-सेवकों तथा ग्राम-संगठकों के लिए उचित अभ्यास-क्रम बनाने का आदेश दिया जाय।

यदि एक शब्द में अभ्यास-क्रम की कल्पना देनी हो, तो मैं कहूँगा कि इस योजना में जितने सारे विषय आते हैं, उन सबका अभ्यास हो सकने की उक्त अभ्यास-क्रम मे क्षमता होनी चाहिए। अथवा ट्रेंड कार्यकर्ता को मुख्य विषय का सम्यक् ज्ञान और अन्य विषयों का कामचलाऊ ज्ञान होना चाहिए। इस शिक्षा का मतलब यह हरगिज न मानना चाहिए कि उसे पाने के बाद मनुष्य हर-फन मौला बन जायगा। उसे इस योजना का ध्येय क्या है, उसका स्वरूप कैसा है, इसकी पूरी कल्पना हो जानी चाहिए और सारे काम योग्य

दिशाओं में चल रहे हैं या नहीं, इसका उसे ज्ञान होना चाहिए और दूसरों का भी मार्ग-दर्शन करने की उसमें क्षमता आनी चाहिए।

अभ्यास-क्रम में नीचे दिये हुए विषय रखे जाने चाहिए :

(अ) जो नव-समाज निर्माण करने की हमारी कल्पना है, उसकी विद्यार्थी को पूरी कल्पना या जानकारी होनी चाहिए। अर्थात् दूसरे शब्दों से कहें, तो उसे ग्रामों के उत्थान की जो हमारी कोशिश है, उसकी पूरी कल्पना होनी चाहिए और उसीसे राष्ट्र का पुनर्निर्माण होगा, ऐसी दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिए।

(आ) ग्रामों के उत्थान के सभी कार्यक्रमों का—उदाहरणार्थ ग्राम-पंचायतें संगठित करना, बहुधंधी सहकारी समितियाँ संगठित करना और ग्राम-सेवा-संघ स्थापित करना आदि का—सम्यक् ज्ञान कराना। इसका मतलब होगा ग्रामीण समाजशास्त्र, ग्रामीण अर्थ-शास्त्र, ग्रामीण राजकरण और ग्राम-संगठन—इनका अध्ययन।

(इ) ग्रामीणों की मनोरचना और ग्रामीण दृष्टिकोण की अच्छी जानकारी। इसका मतलब होगा—ग्रामीण परंपरा, ग्रामीण आदतें, रीति-रिवाज और गाँवों के खेतों में, कारखानों में काम करने की पद्धति और उनकी वस्तु-विनिमय की पद्धति, इनका बहुत बारीकी से अध्ययन।

(ई) गाँवों में काम करने का तंत्र। इसमें गाँव की पूरी जाँच करना समाविष्ट है। ऐसी जाँच में गाँव की हरएक बात की जानकारी आनी चाहिए। इस मद मे इस बात का भी समावेश होगा कि कौन सा काम किस तरीके से किया जाय, जिससे ग्रामीणों का अधिक-से-अधिक स्वयंस्फूर्त सहयोग प्राप्त हो सके।

५. विद्यार्थियों की योग्यता कहाँ तक बढ़नी चाहिए—शिक्षा-काल की अवधि के बाद पास विद्यार्थियों की योग्यता कितनी होनी चा।

पर्यवेक्षक और कायम मुकामी-अध्यापकों को मासिक वेतन दिया जायगा। समय-समय पर आनेवाले विशेषज्ञों को आने-जाने का सफर खर्च, उनके रहने और भोजन का मुफ्त इंतजाम और यदि अत्यंत आवश्यक हो, तो कुछ पुरस्कार देना चाहिए।

(इ) ट्रेनिंग की शुरुआत और मियाद—हमारी ऐसी निश्चित राय है कि इस योजनांतर्गत कार्यकर्ताओं को शिक्षण देने के काम की पूरी तैयारियाँ ३१ मार्च, १९४९ के पहले पूरी हो जानी चाहिए, ताकि १ अप्रल, १९४९ से ग्रामीण संगठकों तथा तत्सम लोगों को शिक्षण देने का एक और ग्राम-सेवकों तथा तत्सम लोगों को शिक्षण देने का दूसरा, ऐसे दोनों के शिक्षण-केंद्र काम करने लग जायँ। ट्रेनिंग के काम में यदि ढिलाई हुई, तो उसका मतलब होगा, समूचे कार्यक्रम को अमल में लाने में ढिलाई। इसलिए ढिलाई को कहीं स्थान नहीं मिलना चाहिए।

४. ट्रेनिंग का अभ्यास-क्रम—इसके लिए हमारी सूचना है कि दो या तीन व्यक्तियों की एक कमेटी बनायी जाय और उन्हें ग्राम-सेवकों तथा ग्राम-संगठकों के लिए उचित अभ्यास-क्रम बनाने का आदेश दिया जाय।

यदि एक शब्द में अभ्यास-क्रम की कल्पना देनी हो, तो मैं कहूँगा कि इस योजना में जितने सारे विषय आते हैं, उन सबका अभ्यास हो सकने की उक्त अभ्यास-क्रम में क्षमता होनी चाहिए। अथवा ट्रेंड कार्यकर्ता को मुख्य विषय का सम्यक् ज्ञान और अन्य विषयों का कामचलाऊ ज्ञान होना चाहिए। इस शिक्षा का मतलब यह हरगिज न मानना चाहिए कि उसे पाने के बाद मनुष्य हर-फन मौला बन जायगा। उसे इस योजना का ध्येय क्या है, उसका स्वरूप कैसा है, इसकी पूरी कल्पना हो जानी चाहिए और सारे काम योग्य

जो लोग ऐसी रिपोर्ट भेजना मान्य करें, उन्हें ही निरीक्षण करने का अधिकार दिया जाय। इन गैरसरकारी निरीक्षकों का प्रवास-खर्च सरकारी ग्राम सुधार-विभाग दे। ऐसे गैरसरकारी निरीक्षक प्रत्यक्ष कार्य करनेवाले और ग्राम-सुधार महकमा इनको जोड़ने की कड़ी का काम करेंगे।

विशेष सूचना

ग्राम-सुधार-विभाग का काम बिलकुल नया और बहुत कठिन है, यह हम महसूस करते हैं। इसलिए इसकी कार्य-पद्धति ऊपर से लेकर नीचे तक बिलकुल आसान और फुर्तीली हो, हमेशा की सरकारी पद्धति के माफिक कष्टदायक और बहुत समय लेनेवाली न हो। यदि ऐसा नहीं होता, तो बहुत समय और पैसा बरबाद जायगा। आज की हालत में किसी भी योजना के खर्च की मंजूरी के लिए बहुत समय लग जाता है और उस दरमियान उस योजना को कार्यान्वित करने के लिए जो वैतनिक कार्यकर्ता रखे जाते हैं, वे अलग-अलग मदों में खर्च किये चले जाते हैं। हमारी राय है कि हरएक जिले को अपनी योजना और उसका नया बजट फौरन बना लेने को कहा जाय। एक बार योजनाएँ और बजट मंजूर हो जाने पर फिर प्रान्तीय ग्राम-सुधार अफसर को ग्राम-सुधार-विभाग के प्रमुख के नाते, अन्य किसी विभाग के प्रमुख के अनुसार, बजट की मदों पर खर्च करने का अधिकार दे दिया जाय। योजनाएँ और बजट में स्थानीय सहायता कितनी मिल सकेगी, इसका निर्देश अवश्य रहे। जिस प्रकार शिक्षा-विभाग या मेडिकल विभाग को अपने विभाग के बजट के मदों पर खर्च करने देने की इजाजत रहती है, उसी प्रकार ग्राम-सुधार-विभाग को भी अपने विभाग के बजट के मदों पर खर्च करने की सहूलियत चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता है, तो सरकारी शिष्टाचारों के नीचे और किसकी सम्मति और इजाजत लेना, यह स्पष्ट न होने से काम रुक जायगा।